# देखी सुनी

वर्ष 2011, अंक 17

## अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस की शुभकामनायें।

प्रिय साथियों !

इस बार के अंक में हम लेकर आये हैं महिला दिवस के 100 साल और बराबरी (स्त्री–पुरुष) के सपने की हकीकत। इसमे शामिल है – महिला दिवस के इतिहास, सशक्तिकरण व चुनौती से जुड़े लेख, दलित हिंसा, संसद में महिला, बजट और खाद्य सुरक्षा कानून पर नज़रिया।

आशा है महिला दिवस को समर्पित हमारा ये प्रयास आपके लिये उपयोगी होगा। अपने सुझाव व प्रतिक्रियायें हम तक जरुर पहुचांए।

**नीतू रौतेला**
**जागोरी संदर्भ समूह**

# बाकी हैं कई गढ़

**महिलाओं ने तमाम क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा और क्षमता को साबित किया है। उनकी तरक्की और विकास के किस्से हमारी आंखों के सामने हैं। इसके बावजूद उनके साथ दोहरा बर्ताव और बढ़ते अपराध चिंता के विषय हैं। अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के सौ साल पूरे होने पर महिलाओं की स्थिति का जायजा ले रही हैं अनीता सहरावत।**

इतिहास के झरोखे में औरत का इतिहास किसी अदृश्य स्याही से लिखा-सा जान पड़ता है। कितने ही ऐसे नाम हैं जो भले ही अपने समय में अपने योगदान के लिए जाने गए हों, पर उनकी अपनी पहचान गुमनाम हो गई। महात्मा गांधी को तो याद किया जाता है पर उनके महानता की सहयोगी रहीं कस्तूरबा गांधी को कौन पूछता है!

अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के सौवें साल में इंदिरा गांधी, प्रतिभा पाटील, सोनिया गांधी,सुषमा स्वराज, मीरा कुमार, कल्पना चावला, लता मंगेशकर, गंगूबाई हंगल, एम एस सुब्बलक्ष्मी कितने ही ऐसे नाम हैं जो परिचय के लिए किसी की मोहताज नहीं हैं। महिला दिवस के इन दस दशकों के सफर में बहुत-सी उपलब्धियां भी झोली में आई हैं। हमारा परिवार और समाज पहले के मुकाबले काफी उदार हुआ है। घर के निर्णयों में औरत की सलाह भी खास होने लगी है। हम पढ़ने, घूमने फिरने, जिदंगी जीने के लिए आजाद हैं, मन की बात कहने में पहले से ज्यादा सक्षम हैं। अब लड़कियों को घर से बाहर जाने के लिए बात-बात सबकी अनुमति नहीं लेनी पड़ती। बेटियों के पैदा होने पर खुश होने वाले परिवारों की गिनती बढ़ी है। लेकिन इससे यह समझना ठीक नहीं है कि लोगों की सामंती सोच पूरी तरह बदल गई है। मुद्दे और समस्याएं आज भी बनी हुई हैं, बस रवैए में थोड़ी-सी लोच आ गई है। जागरूकता ने उसमें अधिकारों की अकुलाहट भर दी हैं।

इसी अकुलाहट ने महिला दिवस की शुरूआत की थी। आमतौर पर महिला दिवस का जब भी जिक्र होता है तो इसे 1910 में कोपनहेगन की घटना से जोड़कर देखा जाता है जिसमें महिलाओं के एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में यह तय किया गया कि साल में एक ऐसा दिन मनाया जाए जो महिलाओं के अधिकारों, संघर्षों और सफलताओं की अनुगूंज हो। हांलाकि उस समय ये औद्योगिक क्षेत्र में महिलाओं के साथ हो रहे दोहरे बर्ताव से निजात पाने के लिए उठाया गया कदम था। 1908 में अमेरिका की कपड़ा बनाने वाली महिलाओं ने पहली बार काम की बेहतर स्थितियों की मांग की, क्योंकि बराबर मेहनत के बावजूद उन्हें पुरुषों से कम वेतन मिलता था। बदतर हालात में काम करने की वजह से खराब स्वास्थ के चलते काफी महिलाओं की मौत भी हो जाती थी और न ही उन्हें मताधिकार था। 19 मार्च 1911 में पहला अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस मनाया गया। इसके कुछ ही दिनों बाद 25 मार्च को न्यूयार्क शहर की एक फैक्ट्री आग लगने से तकरीबन 140 श्रमिकों की मौत हो गई। इस घटना के बाद 8 मार्च 1913 में पहले विश्वयुद्ध की पूर्वसंध्या पर यूरोप की महिलाओं ने शांति रैली निकाली। इसके बाद हर साल का 8 मार्च अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के नाम हो गया। कई देशों में इस दिन राष्ट्रीय अवकाश भी रहता है।

महिला पुरुष के समान अधिकारों की मांग कोई नई बात नहीं पर असल में महिला मताधिकार की मांग वह पहली कड़ी थी जिसने महिला और पुरुषों में समान अधिकारों की पहल की, जिसके स्वर 1851 में पर्शिया में महिलाओं को पहली बार राजनीतिक निर्णयों में हिस्सेदारी के साथ मुखर हुए। इसके बाद आंशिक तौर पर कई यूरोपीय देशों ने महिलाओं को मताधिकार दिया, हांलाकि न्यूजीलैंड ने 1893 में ही महिलाओं को पूर्ण मताधिकार दे दिया था। बस यहीं से शुरुआत हुई उस नई उथल पुथल की जिसके बाद दुनियाभर में औरतों ने वोट का अधिकार पाने के आंदोलन किए। 1907 में पहली बार ब्रिटेन की महिलाओं ने पूर्ण मताधिकार मांगा और विभिन्न महिला समूहों ने एकजुट होकर नेशनल यूनियन फार वूमेंस सफरैज सोसायटी का गठन किया। 7 फरवरी 1907 में तकरीबन तीन हजार औरतों ने रैली निकाली। इतिहास में ये दिन मड मार्च के नाम से जाना जाता है। औरतों ने अनशन किए, गिरफ्तारियां हुईं, यातनाएं दी गईं पर विरोध जारी रहा और आखिरकार 1928 में पूर्ण मताधिकार के साथ सफलता हाथ भी आई। पर 21 वीं सदी में वेटिकन सिटी और सऊदी अरब में आज महिलाओं को वोट डालने की आजादी नहीं है।

औरतों के अधिकारों और समानता के सवाल की पहल भले ही महिला दिवस से हुई पर संयुक्त राष्ट संघ ने इसे दुनिया के पटल पर 1975 में पहली बार रखा जब पूरा एक दशक महिलाओं के नाम मनाया गया। साथ ही इस साल से अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष मनाने की अनूठी पहल की शुरूआत भी हुई। इसे बतौर दशक और वर्ष मनाने की वजह थी कि दुनियाभर में महिलाओं की स्थिति और परेशानियों का साफ खाका सामने आ सके। 1985 में नेरोबी में हुए महिला वर्ष के अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में पहली बार घरेलू महिलाओं को वेतन देने की मांग रखी गई। जो पूरा दिन घर, बच्चे, परिवार और कामकाज तो संभालती थी पर इसके एवज में हाथ कुछ नहीं आता था, सिवाय प्रताड़ना के। इस सम्मेलन में दुनियाभर से तकरीबन 189 देशों और 2100 स्वंयसेवी संगठनों ने भागीदारी की और इस पहल को सराहा भी। शुरुआत में महिला दिवस केवल यूरोप में ही मनाया जाता था पर बीसवीं सदी के आखिर इसने तीसरी दुनिया के देशों में भी दस्तक दी।

जानी मानी साहित्यकार मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं कि 'महिलाओं ने विकास किया है। पर तरक्की ने असुरक्षा की भावना को भी गहरा दिया है। कहीं तेजाब फेंक दिया, कहीं मार दिया, बलात्कार की घटनाएं रोज हो रही है। कोई नहीं समझता कि आज औरत कितने तिरिया चरित्र करती हैं जिंदा रहने के लिए। कितने नाटक करती हैं सिर्फ जिंदा रहने के लिए। आज नारी को पूजते हैं या पीटते है, इसके बीच में कहीं उसकी हस्ती नजर नहीं आती।'

शिक्षा और आर्थिक मजबूती ने बेशक औरत की पहचान बदली है। खासतौर पर गांवों की महिलाओं ने भी अब शिक्षा की जरूरत को ज्यादा शिद्दत से समझा है और नहीं चाहती कि अज्ञानता के अंधेरे में जो दुर्गति उन्होंने झेली, उनकी बेटियां भी झेलें। साल दर साल स्कूल कालेजों में परिणामों के बेहतर प्रतिशत खुद सफलता के गवाह हैं। 2011 की जनगणना के परिणामों की सबको बेसब्री से इंतचार है, जो न केवल पिछ्ले एक दशक में देश की तरक्की बल्कि महिलाओं की वास्तविकता की तस्वीर को भी रूप देगें। साल 2001 की जनगणना के आंकड़ों में स्त्री और पुरुष शिक्षितों का अनुपात 64 और 84 फीसद का था। यह आजादी के बाद शिक्षितों की गिनती की दौड़ में सबसे लंबी छ्लांग थी। इससे भी खास बात यह थी कि 1951 की गिनती में केवल 8 फीसद महिलाएं ही पढ़ी लिखी थीं और 2001 में 53 फीसद महिलाएं शिक्षा के मौलिक अधिकार के साथ खड़ी हुईं। बिहार इस गिनती में सबसे पीछे रहा। जबकि महिलाओं के खिलाफ अपराधों के सबसे अधिक मामले वाले राज्य राजस्थान में शिक्षितों की संख्या में बाकी की तुलना में सबसे तेज 21 फीसद की बढ़ोतरी दर्ज की गई। राजस्थान में ग्रामीण महिलाओं के विकास में जुटी ग्रामीण विकास विज्ञान समिति की सचिव शशि त्यागी कहती हैं कि शिक्षा और जागरूकता ने राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में संभावनाओं के नए दरवाजे खोले हैं, अधिकारों के लिए औरतें बोलना सीखने लगी हैं। पर मानसिकता में खास बदलाव अभी नहीं आया है। पर्दा प्रथा, बाल विवाह, कन्या भ्रूण हत्या, दहेज का भूत अब भी है। हां, टेक्नोलाजी और विकास की बांह पकड़कर लोगों ने अपराधों के नए रास्ते जरूर ढूंढ़ लिए हैं।

**सच यह है कि हमारे समाज की मानसिक बुनावट दोहरी है। एक तरफ इज्जत के नाम पर हत्या होती होती है तो दूसरी तरफ बिना विवाह के युवक–युवती साथ रहते हैं।**

पिछ्ले साल उत्तर प्रदेश में हुए जिला पंचायत के चुनाव में देखा गया कि महिला उम्मीदवारों के प्रचार के पोस्टरों में पोस्टरों में उनके पतियों की फोटो भी लगी हुई थी। जो न केवल उन औरतों की पहचान थे बल्कि पदों के लिए अप्रत्यक्ष दावेदार भी वही थे। यह एक दुखद स्थिति है जो बताती है कि अभी भी पुरुष अपना वर्चस्व नहीं छोड़ना चाहते। कहानीकार देवेंद्र कहते हैं कि अपने पैरों पर खड़े होकर औरत को मजबूती तो मिली है, पर दबदबा अभी पुरूष का ही है। औरत को कर्ता बनने का अधिकार पहले भी नहीं था और अब भी नहीं है। खुद गांधीजी ने जब ब्रहचर्य के व्रत के पालन की बात सोची थी तब यह सिर्फ उन्हीं का निर्णय था, बा से उन्होंने भी नहीं पूछा था। बस बता दिया था जिसे बा ने सहजता से मान भी लिया। सदियों से चली आ रही परंपराओं को ढहा देना इतना आसान नहीं।'

यह भी सच है कि विकास की दर के साथ महिलाओं के खिलाफ अपराधों की संख्या भी बढ़ी है। आंकड़ों के मुताबिक देशभर में हर मिनट 29 बलात्कार की घटनाएं होती है, 53 यौन उत्पीड़न, 16 हत्याएं, 15 छेड़छाड़, 19 क्रूरता की वारदात। साथ ही दहेज हत्या के 77 मामले हर मिनट सामने आते हैं। यह आंकड़े चौकाने वाले नहीं भयावह है। 'साउथ सालिडेरिटी' की अध्यक्ष कनाडावासी जिल कार हैरिस बीस साल से भारत में काम कर रही हैं। वह बताती हैं कि इतने सालों में यह बदलाव तो आया है कि परदे से बाहर आकर औरतें हर क्षेत्र में साझीदारी कर रही है, पर असुरक्षा के डर से महिलाएं दो कदम आगे रखती हैं तो चार कदम पीछे खींच लेती हैं। सिर्फ कानूनों में से परेशानी का हल नहीं ढूंढ़ा जा सकता।

कन्या भ्रूण हत्या से समस्या और बढ़ी है। भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत भ्रूण को मारने वाली मां हत्या की दोषी है। खुद सरकार भी भ्रूण हत्या के बढ़ते मामलों से खासी परेशान है। शोध बताते है कि यहां सालभर में तकरीबन 16 लाख भ्रूण हत्याएं की जाती हैं। लिंग परीक्षण के जरिए लड़की को पैदा ही नहीं होने दिया जाता। भारत में 100 लड़कों पर 93 लड़कियां को अनुपात हैं, जबकि वैश्विक पटल पर अनुपात के नजरिए से 100 लड़कों पर 105 लड़कियां हैं। चिकित्सा की आधुनिक तकनीकों ने समाज में लिंग परीक्षण जैसे जघन्य अपराधों को आसान और रोकने के प्रयासों को पंगु कर दिया है।

यहां काफी हद तक समाज की सोच भी आड़े आती हैं। बेटे के बिना आज भी परिवार पूरा नहीं माना जाता। ऐसा बिल्कुल नहीं कि ये हत्याएं गरीब और पिछड़े इलाकों में होती हों। पढ़ा लिखा वर्ग इन हत्याओं में सबसे आगे है।

मैत्रेयी पुष्पा अपना अनुभव बताती हैं कि 'सिर्फ बेटियों की मां पर सामाजिक दबाव इतना जबर्दस्त होता है कि वह बेचारी करें तो क्या करें। खुद जब मेरे ही एक के बाद एक तीन बेटियां हुईं तो लोगो ने मेरा जीना मुश्किल कर दिया। दस साल तक मैं घर से बाहर नहीं निकली। मेरी बेटियां इस हायतौबा की वजह से मेरे साथ कहीं नहीं जाती थीं। एक बार मेरी सबसे छोटी बेटी ने मुझसे पूछा कि क्या मैं बेटे की उम्मीद में पैदा हुई थी। और मैने कहा कि हां बेटा। ये बात मै आज भी स्वीकार करती हूं। केवल राजधानी दिल्ली से देश को मत आंकिए, और दिल्ली में भी ऐसी औरतें हैं।'

सच यह है कि हमारे समाज की मानसिक बुनावट दोहरी है। एक तरफ इज्जत के नाम पर हत्या होती होती है तो दूसरी तरफ बिना विवाह के युवक-युवती साथ रहते हैं।

सच है महिलाओं ने काफी प्रगति की है। लेकिन अभी भी तमाम समस्याएं और सवाल हैं जिनका जवाब तलाशा जाना बाकी है। यह विचार फैलाया गया कि अधिकारों की आड़ में महिलाएं पुरुष-विरोधी रुख अख्तियार कर रही हैं। जबकि हकीकत यह है कि स्त्री ने कभी पुरुष का विरोध नहीं किया। उसकी कुलजमा कोशिश अपनी अस्मिता को पाने और बचाए रखने की रही है। अभी बहुत सारे किले और गढ़ हैं जिन्हें उसे ध्वस्त करना है। □

# सौ साल की आधी-अधूरी तस्वीर

**अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस**

अलका आर्य

अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के सौ साल पूरे हो गये हैं और इन सौ सालों में स्त्री की दुनिया कितनी बदली है, इस सवाल का जवाब सपाट नहीं हो सकता। सौ सालों का इतिहास एक तरफ महिलाओं के संघर्ष, उपलब्धियों के बाबत आज की किशोर पीढ़ी को बताता है तो दूसरी तरफ उसे आगाह भी करता है। आगाह इस संदर्भ में कि उसे आज जो विरासत में मिला है, उसके महत्व को पहचाने और जो नहीं मिला है, उसे हासिल करने के लिए खुद को तैयार करे

सौ साल पहले जर्मनी डेनमार्क, स्विटजरलैंड, आस्ट्रिया में लाखों महिलाओं व पुरुषों ने महिला अधिकारों के लिए रैलियों में हिस्सा लिया। उनकी मुख्य मांगों में महिलाओं को वोट देने के अधिकार के साथ कार्यस्थल पर उनके साथ होने वाले भेदभाव को खत्म करना शामिल था। अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के सौ साल पूरे हो गये हैं और इन सौ सालों में स्त्री की दुनिया कितनी बदली है, इस सवाल का जवाब सपाट नहीं हो सकता। देश-दुनिया के राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक हालात, नीतियां व आंदोलन इस बदलाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सौ सालों का इतिहास एक तरफ महिलाओं के संघर्ष, उपलब्धियों के बाबत आज की किशोर पीढ़ी को बताता है तो दूसरी तरफ आगाह भी करता है। आगाह इस संदर्भ में कि उसे आज जो विरासत में मिला है, उसके महत्व को पहचाने और जो नहीं मिला, उसे हासिल करने के लिए खुद को तैयार करे।

यह सच है कि स्त्रियां जिस बराबरी की हकदार हैं, उससे वे 21वीं सदी का एक दशक गुजर जाने के बाद भी वंचित हैं। अंतरराष्ट्रीय मंचों पर गाहे-बगाहे इस पर चर्चा होती रहती है और गैर-बराबरी की टीस साहित्य से लेकर पेंटिंग व छायाचित्रों के माध्यम से व्यक्त होती रहती है। मुंशी प्रेमचंद का मानना था- 'लड़कियों को अच्छी शिक्षा दी जाए और उन्हें संसार में अपनी राह बनाने के लिए छोड़ दिया जाए, उसी तरह जैसे हम लड़कों को छोड़ देते हैं। उन्हें विवाहित देखने का मोह हमें छोड़ देना चाहिए। और जैसे हम युवकों के पथभ्रष्ट होने की परवाह नहीं करते, उसी तरह हमें लड़कियों पर भी भरोसा करना चाहिए। हमें कोई अधिकार नहीं कि लड़कियों की इच्छा के विरुद्ध रूढ़ियों के गुलाम बनकर केवल इस भय से कि खानदान की नाक न कट जाए, लड़कियों को किसी न किसी के गले मढ़ दें।'

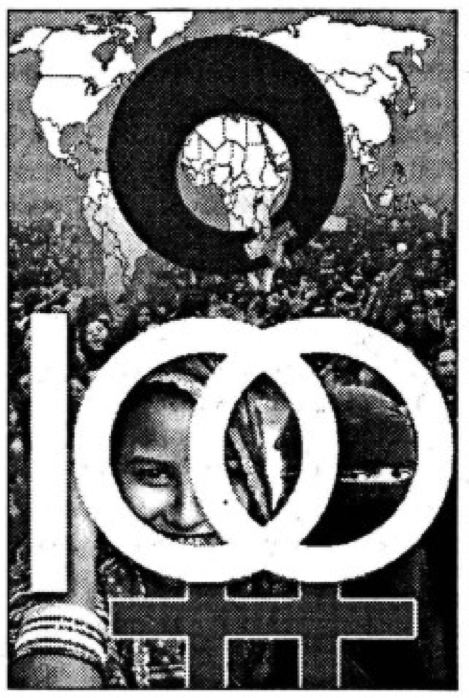

लेकिन हम जानते हैं कि खानदान की नाक बचाने के नाम पर आज भी भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश में कितनी ही लड़कियों की हत्या कर दी जाती है। महिलाओं के खिलाफ होने वाली हिंसा के अनेक रूप हैं। विडंबना यह है कि बदलाव के इस दौर में महिलाएं हिंसा की ज्यादा शिकार हो रही हैं। शिक्षा महिलाओं को जागरूक बनाती है, लिहाजा वे आंखें बंद करके मर्दों का हुक्म मानने से इंकार करती हैं। जब वे सवाल करती हैं तो इससे विवाद बढ़ता है और उसके एवज में उन पर हिंसा भी बढ़ती है। धार्मिक कट्टरता व सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक कारण भी महिलाओं के खिलाफ होने वाली हिंसा को प्रभावित करते हैं।

कई मुल्कों में दबाव के बाद प्रगतिशील कानून बने जरूर हैं मगर उनके अमल में प्रतिबद्धता का अभाव अपेक्षित नतीजों को रोके हुए है। मिसाल के तौर पर अपने देश में अक्टूबर 2006 को महिलाओं के खिलाफ घरेलू हिंसा संरक्षण कानून 2005 लागू तो हो गया पर राज्य सरकारों की प्राथमिकता इसे न सख्ती से लागू करने की है और न ही इसके लिए बुनियादी ढांचा मुहैया कराने की। पीड़ित महिलाओं के प्रति राज्य का यह नजरिया अपराध है। विश्व के ज्यादातर हिस्सों में महिलाएं कृषि भूमि के मालिकाना हक और जमीन से आय अर्जित करने के अधिकार के मामले में पुरुषों से बहुत पीछे हैं जबकि अनाज उत्पादन में उनकी प्रमुख भूमिका है। खाद्य एवं कृषि संगठन की राय में पारपंरिक मानदंड, धार्मिक मान्यता और सामाजिक तौर-तरीकों के कारण जमीन के मालिकाना हक में फर्क आता है। औरतों को अलग रखने या पर्दा जैसे सामाजिक-सांस्कृतिक रिवाज और कानूनी अड़चनों के कारण भारत में सिर्फ 12.98 लाख महिलाओं के पास जमीन का मालिकाना हक है।

अधिकारों का हनन विरोधाभासी कानूनों या लंबी परपंरा और उन संस्थानों के कामकाज के कारण होता है जो जमीन का मालिकाना हक परिवार के पुरुषों को प्रदान करते हैं। हालांकि अपने देश में कुछ पर्वतीय इलाकों खासकर उत्तर पूर्व के राज्यों में मातृसत्तात्मक समाज होने के कारण भूमि पर महिलाओं का मालिकाना हक होता है मगर अब वहां भी यह रस्मी ही रह गया है।

इसमें कोई विवाद नहीं है कि महिलाओं ने हर क्षेत्र में उपलब्धियां हासिल की हैं और वे वह सब कुछ कर सकती हैं, जो पुरुष कर सकते हैं। दो दिन पहले यानी 6 मार्च को देश की एकमात्र महिला बेस जंपर अर्चना सरदाना ने स्कूबा डाइविंग करते हुए समुद्र के भीतर 30 मीटर की गहराई में राष्ट्रध्वज फहराने वाली पहली भारतीय महिला होने का गौरव हासिल किया।

बीते साल राजस्थान में सिर्फ महिला पुलिस बटालियन ने कमान संभाली और यह देश में अपनी तरह की पहली बटालियन है। इसकी कार्यसूची में आतंकवाद व नक्सलवाद जैसी चुनौतियों का सामना भी शामिल है। पर पहचान और लैंगिक बराबरी अब भी उनसे किनारा कर रही है। अमेरिका की विदेश मंत्री हिलेरी क्लिटंन जब भारत दौरे पर आई थीं तो मीडिया ने उनकी डिप्लोमेसी स्किल पर टिप्पणी करने की बजाए ज्यादा फोकस उनकी ड्रेस पर किया। उत्तराखंड के जामन खाता गांव की प्रधान शीला बीते ढाई सालों से पति से इस मुद्दे को लेकर संघर्ष कर रही है कि वह पंचायत के मामलों में दखल देना बंद करे। उसे इस संघर्ष में 50 प्रतिशत सफलता मिली है लेकिन उसकी तरह निर्वाचित महिला जनप्रतिनिधियों द्वारा अपने अधिकारों, शक्तियों का खुद इस्तेमाल करने वाली व इस जरिए राजनीति में बदलाव लाने वाली मुहिम को उस समय ठेस पहुचंती है जब इस 24 फरवरी को अपने देश के महाराष्ट्र सूबे के उद्योग मंत्री नारायण राणे 'महिला व राजनीति' विषय पर मुबई में महिलाओं को पहले परिवार व बच्चों की सुध लेने की सलाह देते हैं। राणे की राय में राजनीति में आरक्षण ठीक है पर हमारी संस्कृति यही कहती है कि महिलाओं के लिए पहली प्राथमिकता उनका परिवार है।

दरअसल पुरुषवादी मानसिकता अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के सौ साल पूरे होने के बाद भी मौजूद है और इसके खिलाफ संघर्ष जारी है। हीननेह रोसिन 'द एंड ऑफ मेन' नामक लेख में लिखती हैं कि विकासवादी वैज्ञानिकों ने निष्कर्ष निकाला है कि हमारे शिकार व संग्रह के दौर से ही हम वैसे हालात की तरफ बढ़े हैं जिसमें ऐसे सख्त मर्दों की जरूरत पड़ी है,जो कम संसाधन हासिल करने की प्रतियोगिता में शामिल होने व नेतृत्व का गुण रखते हैं। और औरतों को इस तरह ढाला गया कि वे घर के अंदर अपनी संतानों का ख्याल रख सकें और सुविधाएं जुटा सकें।...क्या हो अगर पुरुषों के शारीरिक बल के मुकाबले महिलाओं की संवेदनशीलता,हमदर्दी व लचीलेपन को ज्यादा तरजीह दी जाए।

हाल में मिस्र में होस्नी मुबारक को सत्ता से बेदखल करने में वहां की महिलाओं ने भी मुख्य भूमिका निभाई मगर उनकी भूमिका यहीं खत्म नहीं हो जाती। उन्हें अब भी सचेत व देश की राजनीतिक गतिविधियों से जुड़े रहने की जरूरत है। यह समझ अरब दुनिया की महिला कार्यकताओं के बयानों व कामों में साफ झलकती है। उनका माना है कि चीजें पूरी तरह नहीं बदली हैं बल्कि बदल रही हैं। होस्नी मुबारक का सत्ता से हटना काफी नहीं है। महिलाओं ने इस रूप में पहला चरण जीता है। वे सिर्फ अरब देशों में उन महिलाओं के लिए संघर्ष नहीं कर रहीं जो बुनियादी अधिकारों से वंचित हैं। उनके सरोकार का दायरा बड़ा है। राजनीतिक स्तर पर आगे बढ़ना व बराबरी हासिल करना। नार्वे ने करीब बीस साल पहले महिला सशक्तीकरण का दौर देखा। नार्वे के सशक्तीकरण में आज महिलाओं का योगदान प्रमुख है। इससे उसे मजबूती मिली। महिलाओं के सशक्तीकरण से पूरा परिवार, समाज, देश और विश्व मजबूत होता है। पर रुके हुए लोग इसे मानने को तैयार नहीं दिखते।

---

इंटरनेशनल वूमेंस डे

# सफर

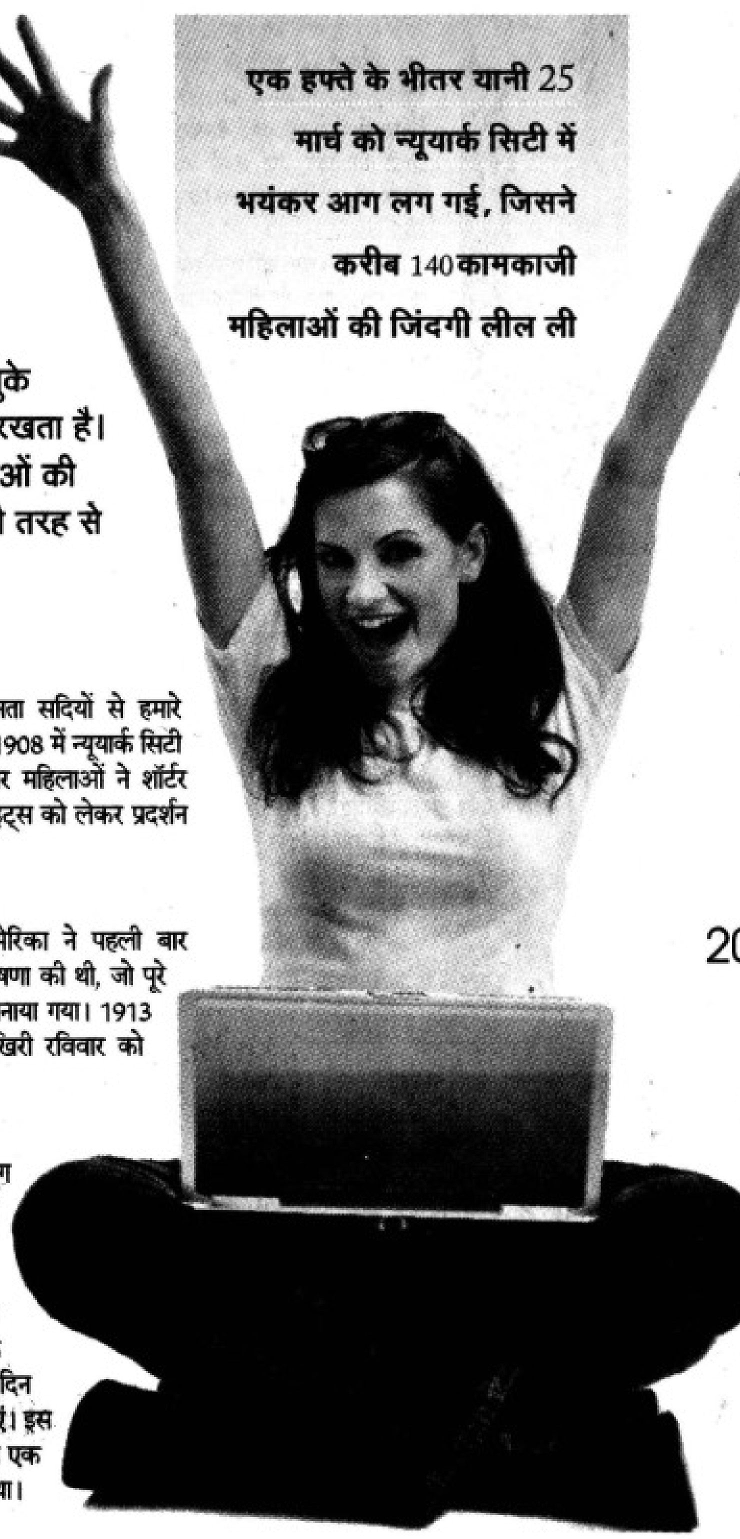

**एक हफ्ते के भीतर यानी 25 मार्च को न्यूयार्क सिटी में भयंकर आग लग गई, जिसने करीब 140 कामकाजी महिलाओं की जिंदगी लील ली**

**महिला सशक्तिकरण दिवस के सौ साल तो पूरे हो चुके हैं लेकिन इस लड़ाई में कितने संघर्ष किये गये, यह मायने रखता है। आबादी बढ़ने के साथ औद्योगिकीकरण के कारण महिलाओं की स्थिति में व्यापक परिवर्तन तो हुआ है लेकिन अब भी वे पूरी तरह से सशक्त नहीं हो पाई हैं**

## 1908

महिलाओं को लेकर असमानता सदियों से हमारे समाज का कोढ़ बना हुआ है। 1908 में न्यूयार्क सिटी में पहली बार करीब 15 हजार महिलाओं ने शॉर्टर आवर, बेटर पे और वोटिंग राइट्स को लेकर प्रदर्शन किया था।

## 1909

सोशियलिस्ट पार्टी ऑफ अमेरिका ने पहली बार नेशनल वूमेंस डे मनाने की घोषणा की थी, जो पूरे अमेरिका में 28 फरवरी को मनाया गया। 1913 तक महिलाएं फरवरी के आखिरी रविवार को नेशनल वूमेंस डे मनाती रहीं।

## 1910

इस साल कोपेनहेगन में वर्किंग वूमेन का दूसरा इंटरनेशनल कॉन्फ्रेंस आयोजित किया गया। क्लारा जेटकिन नामक महिला ने पहली बार इंटरनेशनल वूमेंस डे मनाने का विचार लोगों के सामने रखा कि हर साल एक ही दिन प्रत्येक देश इस दिवस को मनाएं। इस कॉन्फ्रेंस में 17 देशों के करीब एक सौ प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया था।

## 1911

**कोपेनहेगन में हुए समझौते के बाद पहली बार ऑस्ट्रिया, डेनमार्क, जर्मनी और स्विट्जरलैंड ने मिलकर 19 मार्च को इंटरनेशनल वूमेंस डे मनाया। करीब दस लाख पुरुष और महिलाएं इससे संबंधित रैली में शामिल हुईं। इसमें काम, मतदान और ट्रेनिंग को लेकर अधिकार के साथ भेदभाव को खत्म करने की मांग की गई। लेकिन एक हफ्ते की भीतर यानी 25 मार्च को न्यूयार्क सिटी में भयंकर आग लग गई, जिसने करीब 140 कामकाजी महिलाओं की जिंदगी लील ली। इसके बाद महिलाओं के कामकाज की ओर सबका ध्यान गया। इसी साल 'ब्रेड एंड रोजेज' कैम्पेन आयोजित किया गया था**

## 1913-14

1913 में इंटरनेशनल वूमेंस डे को आठ मार्च शिफ्ट किया गया, जिसे अब भी मनाया जा रहा है। 1914 में यूरोप में युद्ध और महिलाओं की स्थिति को लेकर जमकर कैम्पेन चला।

## 1917

युद्ध में करीब बीस लाख रूसी सैनिकों के मारे जाने को लेकर 'ब्रेड एंड पीस' कैम्पेन चला। महिलाओं ने करीब चार दिनों तक की हड़ताल की और जिस दिन हड़ताल शुरू की गई, उसके लिए दिन चुना गया 23 फरवरी, रविवार।

## 1918-1919

सोशलिस्ट आंदोलन के तौर पर उभरे इंटरनेशनल वूमेंस डे को वैश्विक स्तर पर मनाया जाने लगा और यह आंदोलन लगातार सुदृढ़ हुआ। इसके बाद संयुक्त राष्ट्र ने इसे लेकर एक कॉन्फ्रेंस भी आयोजित की। 1975 में संयुक्त राष्ट्र ने इंटरनेशनल वूमेंस डे पर अपनी मुहर लगा दी। इस दौर में कई संस्थान भी महिलाओं के विरुद्ध हिंसा और समानता के साथ उनकी इज्जत के अधिकार को लेकर सामने आए।

## 2000 और इसके बाद

2000 आते-आते अफगानिस्तान, आर्मेनिया, अजरबेजान, बेलारूस, कंबोडिया, चीन, क्यूबा, जॉर्जिया, कजाकिस्तान, मालदीव, नेपाल, रूस, तजाकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, युगांडा आदि में इस दिन सरकारी छुट्टी की घोषणा की गई। मां, पत्नी, गलफ्रेंड, कलीग आदि को पुरुषों द्वारा आदर के साथ फूल और गिफ्ट देने का प्रचलन शुरू हुआ। नए दशक ने महिलाओं की स्थिति और समानता को लेकर काफी बदलाव देखे हैं। अब बोर्ड रूम, संसदीय तंत्र के साथ सभी क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित की गई। हालांकि अब भी पुरुषों के समान न तो उन्हें वेतन दिया जाता है और न ही बिजनेस या राजनीति में महिलाओं की समान संख्या ही होती है। इस दौर में महिलाएं अंतरिक्ष में गईं, प्रधानमंत्री बनीं, स्कूल से विश्वविद्यालय तक पहुंची। महिलाओं को जागरूक करने के लिए आठ मार्च को बड़े पैमाने पर कार्यक्रम आयोजित किए जाने लगे।

विनीत उत्पल

# क्या स्त्रियां हिंसा से नहीं बच सकतीं

मेधा

दो दिन पहले अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस की शतवार्षिकी दुनिया और देश में मनाई गई। कुछ अखबारों ने हर पन्ने को महिला दिवस को समर्पित किया। उन्हें विशिष्ट महिलाओं की उपलब्धियों से सजाया। उन उपलब्धियों के बारे में पढ़कर हर महिला का सिर गर्व से ऊंचा हो गया होगा। लेकिन, ये कहानियां विशिष्ट महिलाओं की कहानियां थीं, जिनकी संख्या उंगलियों पर गिनी जाने लायक है। देश की करोड़ों सामान्य महिलाओं की कहानी इन कहानियों से अलहदा है। उनकी कहानी में हिंसा अपने विभिन्न रूपों में केंद्र में है।

आठ मार्च को ही एक खबर दिन भर टीवी चैनलों की सुर्खियों में रही। दिल्ली विश्वविद्यालय के रामलाल आनंद कॉलेज की एक छात्रा की कॉलेज जाते हुए रास्ते में दिन-दहाड़े गोली मारकर हत्या कर दी गई। दिल्ली में ही उसी दिन मायके रह रही पत्नी की गर्दन पर पति ने चाकू से वार किया; एक वृद्धा की लूटपाट के बाद हत्या कर दी गई और एक अन्य वृद्ध महिला ने अपनी बीमारी से तंग आकर आत्मदाह कर लिया। मुंबई में एक महिला ने अपने दो छोटे बच्चों के साथ एक इमारत से कूद कर जान दे दी। बलात्कार की खबरें तो मीडिया का हिस्सा बन चुकी हैं। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार भारत में हर तीसरे मिनट महिला-हिंसा का एक मामला दर्ज किया जाता है और हर 29वें मिनट एक महिला का बलात्कार होता है। प्रति वर्ष 7,600 महिलाओं की हत्या दहेज के लिए कर दी जाती है। उनमें से कुछेक हत्यारों को ही सजा मिल पाती है। भारत में प्रतिदिन लगभग पचास दहेज-उत्पीड़न के मामले दर्ज किए जाते हैं।

इन आंकड़ों में महिला-हिंसा के केवल उजागर पहलू ही शामिल हैं। जो हिंसा महिलाओं की सिसकियों में कभी रीति-रिवाजों और कभी असुरक्षाबोध के कारण दब कर रह जाती है, उसका शायद ही कोई ओर-छोर हो। एक हिंसा जो देह पर घाव देती है और एक हिंसा जो मन पर हमेशा के लिए चस्पा हो जाती है। कामयाब स्त्री हो या साधारण गृहणियां- उनके शांत, सौम्य, मुस्कुराते चेहरों के पीछे चीखों का महासंग्राम चलता रहता है।

पिछले कुछ दशकों में पुरुषों में स्त्रियों के प्रति संवेदनशीलता बढ़ी है, लेकिन ऐसे संवेदनशील पुरुषों की संख्या इतनी कम है कि इन्हें अपवाद ही माना जा सकता है।

शिक्षित और नौकरी करनेवाली स्त्री का जीवन तभी तक शांत है, जब तक वह समझती है कि केवल घर की आर्थिक समृद्धि को बढ़ाने के लिए वह काम कर रही है। जैसे ही उसे अपने स्वतंत्र अस्तित्व का बोध होने लगता है, वैसे ही चाहे कार्यस्थल हो अथवा घर - हर जगह उसकी जिंदगी में भूचाल आ जाता है।

घरेलू हिंसा के लिए कानून बनाए गए। लेकिन क्या कानून को कारगर बना पाना इस समाज में संभव है? घर के बाहर की हिंसा के खिलाफ लड़ना आसान है, लेकिन पति की हिंसा के खिलाफ लड़ना और अकेली स्त्री के रूप में इस समाज में जीना कितना मुश्किल है। किसी समाज के लिए इससे अधिक शापित समय क्या होगा; जब घर और कालेज जैसी जगहों पर भी स्त्रियां बलात्कार की शिकार हो सकती हों; उनकी जान ली जा सकती हो। शायद इसीलिए मध्यवर्गीय नौकरीपेशा एवं घरेलू महिला से लेकर बर्तन-बासन करके अपना पेट पालनेवाली श्रमजीवी महिला पति की हां में हां मिलाकर चलती हैं।

इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि पिछले कुछ दशकों में पुरुषों में स्त्रियों के प्रति संवेदनशीलता बढ़ी है, लेकिन ऐसे संवेदनशील पुरुषों की संख्या इतनी कम है कि इन्हें अपवाद ही माना जा सकता है। राष्ट्रीय महिला आयोग की संयुक्त सचिव सुंदरी सुब्रमणियम पुजारी ने कहा था कि महिलाओं के प्रति हिंसा पर काबू पाने के लिए पांच खंभों का सक्रिय होना जरूरी है। ये पांच खंभे हैं- अच्छे कानून, उनका उचित तरीके से लागू हो पाना, न्यायपालिका, नागरिक समाज, स्वयंसेवी संगठन और मीडिया। भारत में लैंगिक विषमता को मिटाने और स्त्री-अधिकारों की रक्षा के कई सक्षम कानून बनाए जा चुके हैं। लेकिन कानून लागू करने की सही व्यवस्था न होने के कारण इनका प्रभाव बहुत कम नजर आता है। आखिर क्यों न्यायपालिका भी महिलाओं के मामलों में उतनी सक्षम नजर नहीं आती? क्यों नागरिक समाज और स्वयंसेवी संगठनों के जागरूकता अभियानों के बावजूद स्त्रियां हर जगह असुरक्षित हैं? जहां तक मीडिया का सवाल है, तो वह हमेशा ही स्त्री की आजादी को बाजार के जुमलों में कैद करता आया है। जाने-अनजाने मीडिया स्त्री के वस्तुकरण का माध्यम बना है।

दरअसल ये पांच खंभे रोग के लक्षण तो दूर कर सकते हैं, लेकिन उनको जड़मूल से समाप्त नहीं कर सकते। भारतीय समाज में लैंगिक विषमता को दूर करने के लिए भारतीय पुरुष के मानस को समझना होगा। दरअसल भारतीय-पुरुष का नया बौद्धिक मन उसी तरह निर्गुण रूप में स्त्री-समानता की बात करता है; जैसे पुराना मन उसे निर्गुण रूप में देवी और सगुण रूप में दासी मानता रहा है। दरअसल, आज की नई स्त्री का सामना उस पुरुष से है, जिसमें नयापन और पुरानेपन का खतरनाक घालमेल है। आज का भारतीय पुरुष स्त्री में उसकी बौद्धिक भूमिका को तो जोड़ता है, साथ में उसे आज्ञाकारिता के पुराने चोले में भी देखना चाहता है। और यही वह प्रस्थान बिंदु है, जहां से महिला के प्रति हिंसा की शुरुआत हो जाती है। जब तक समाज की वर्तमान संरचना को तोड़ने के लिए चारों तरफ से प्रहार नहीं होंगे, तब तक स्त्रियां हिंसा से नहीं बच सकतीं।

medhaonline@gmail.com

# आंदोलन एक चेतना है

**महिला आंदोलन की उन पुरोधाओं में से एक हैं कमला भसीन जो इस आंदोलन के हर उतार चढ़ाव और बदलाव की साक्षी हैं। उनके गीत और कविताएं लेख और भाषण नया जोश भर देते हैं। पेश है उनसे सुनीता ठाकुर की बातचीत के कुछ अंश:**

**□ आप एक मां, कार्यकर्ता, लेखिका, आंदोलनकर्ता, प्रशिक्षक भी हैं। औरत की सीमा क्या है?**

● औरत होने के नाते तो हमेशा कुछ खास समस्याएं समाने आती हैं। मेरे जीवन में भी आई हैं। मुझे लगता है अभी भी हम कुछ क्षणों के लिए औरत होना भूल नहीं सकते। हर क्षण हमें याद दिलाया जाता है कि हम औरत हैं। इतना जरूर है कि इन समयाओं के बावजूद मैं आगे बढ़ पाई। परिवार का साथ मिला। मेरे मां बाप ने मेरी कोशिशों और लालसा देखकर मुझे विदेश में पढ़ने से रोका नहीं। न चाहते हुए भी 24 साल की उम्र में शादी की बहुत ही नेक आदमी से। वह पूरी तरह से मुझे समझने को तैयार था, लेकिन मैं एक 'पत्नी' के तौर पर अपने को नहीं ढाल पाई। मैं कतई तैयार नहीं थी कि मैं अपना कोई काम न करूं। पति क्यों, साथी क्यों नहीं, पार्टनर क्यों नहीं- पर लगता है कि किसी भी भाषा में स्त्री पुरुष में बराबरी के दर्जे वाला शब्द ही नहीं है। जब ज्यादा दिक्कत हुई तो उस शादी को तोड़कर मुझे निकलना पड़ा। मैं गांव गांव जाकर विकास और महिला अधिकारों के लिए काम करती रही। आज भी कर रही हूं, जब तक हूं करती रहूंगी। बस यही मेरी ताकत और यही मेरी पहचान है।

**□ आप महिला आंदोलन से एक लंबे समय से जुड़ी रही हैं, आंदोलन की सफलता और असलता को किस रूप में देखती हैं?**

● आज सरकार का कोई भी पर्चा या सरकार का बजट ऐसा नहीं होता जिसमें लिंग का जिक्र न हो। संयुक्त राष्ट्र और गैरसरकारी संगठनों की नीतियों में महिला विकास के मुद्दों को अहमियत दी जाती है। आज महिला मुद्दे ऐसी चर्चा हो गए हैं जिन्हें नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। आज औरतें किताबें लिख रही हैं, फिल्में बना रही हैं, तो महिला आंदोलन एक सोच है, एक जगह है, एक वातावरण है जिसमें हर औरत खुद को जुड़ा हुआ और खुद को लायक, काबिल, कुछ करने में समर्थ पाती है। एक जर्मन लेखिका के अनुसार-औरत अंतिम उपनिवेश है। औरत जो उपनिवेश है उसके श्रम, उसके जिस्म के शोषण पर बहुत से पुरुष पलते हैं। इसलिए उसको वे वह आजादी देने से घबराते हैं जिसकी कि वह हकदार है।' एक और अहम बात है-पूंजीवाद और पितृसत्ता का गठबंधन। सातवें दशक में सौंदर्य प्रतियोगिताओं पर रोक लगा दी गई थी। इन्हें औरतों के देह व्यापार का कारण और एक रूप माना गया। मगर नब्बे के दशक तक आते आते कॉस्मेटिक और पोर्नोग्राफी खुले व्यापार के नाम पर खुलेआम बाजार में छा गई। आज पूंजीवाद के पास महिला आंदोलन से कहीं ज्यादा पैसा है और उसका उपयोग वे इसी तरह महिलाओं की ताकत को कम करने, उन्हें भ्रमित के लिए करते हैं।

**□ महिला आंदोलन में आज क्या खास बदलाव आए हैं?**

● महिला आंदोलन मेरी नजर में हमेशा से एक बदलती हुई चीज है। महिला आंदोलन समाज से अलग नहीं है। यह तो एक प्रक्रिया है- समाज में जो हो रहा है उसके प्रति। हमें रियेक्ट करना पड़ता है। समाज में परिवर्तन के साथ साथ मुद्दे भी बदलते रहते हैं। काम करने के तौर तरीके बदलते रहते हैं। समाज कभी एक सा नहीं रहता। महिला आंदोलन आज गांव गांव में फैला है।

**□ क्या वजह है कि दहेज, घरेलू हिंसा, यौन हिंसा जैसे मुद्दों पर सक्रिय सामाजिक सुधार नहीं आ सका है?**

● जो कानून है वह एक उपकरण है। सिर्फ उसे बना देने से फर्क नहीं पड़ता। उन्हें इस्तेमाल, उन्हें लागू भी करना होता है।

**□ आरक्षण के बारे में क्या राय है ?**

● मैं महिला आरक्षण के पक्ष में हूं। तीन हजार साल से समाज ने औरतों को दोयम रखा है। आरक्षण जरूरी है। ठीक वैसे ही जैसे पिछड़ी जाति एवं आदिवासियों को आरक्षण देकर उनकी सामाजिक स्थिति को ऊपर उठाने की कोशिश की जा रही है।

**□ महिला आरक्षण की सबसे अनिवार्य शर्त क्या होनी चाहिए?**

● महिला सशक्तिकरण एक लंबी प्रक्रिया है, नई चेतना की जरूरतत, शिक्षा की जरूरत है। पहले लोग इस बात को समझें, उन्हें आगे बढ़ने, पढ़ने और विकसित होने का मौका दें।

**□ महिला संगठनों में वह एकजुटता नहीं दिखाई देती जिसकी उम्मीद होती है?**

● महिला आंदोलन कोई संगठन या संस्था तो नहीं है। कुछ हद तक यह हमारे दिमाग की सोच है। हम सोचते हैं कि महिला आंदोलन कोई एक समूह है, जिसमें सभी को एक जैसा सोचना या एकत्र होकर रहना चाहिए। हमें समझना चाहिए कि आंदोलन एक प्रवाह होता है, वह एक चेतना है।

वे सभी अगर अपने अपने समूहों में, मोहल्लों में आठ मार्च मनाती हैं, अगर वे अपने अपने तरीके से आठ दस औरतों के साथ भी महिला दिवस मनाती हैं तो यही अपने आप में एक बड़ी बात है। □

# स्त्री मुक्ति का घूमता पहिया

अलका आर्य

एक साधारण सी दिखने वाली सवारी साइकिल ने शिक्षा और लड़कियों के बीच जो रिश्ता जोड़ा है, वह अमोल व कभी न टूटने वाला है। बिहार में 2006 में बीच में स्कूल छोड़ने वाली 11-14 आयु वर्ग की लड़कियों की तादाद 17.6 फीसदी थी, लेकिन चार साल बाद 2010 में यह 4.6 फीसदी है। यह बहुत बड़ा बुनियादी बदलाव है, जो विकास व लड़कियों की शिक्षा के महत्व को पहचानने वाली राजनीति से निकला है। नीतीश कुमार 2005 में बिहार के मुख्यमंत्री बने और उन्होंने अगले साल 2006 में अपने पिछड़े राज्य की लड़कियों की शिक्षा पर फोकस करते हुए कई योजनाएं शुरू कीं। मसलन, 'मुख्यमंत्री बालिका साइकिल योजना'। इस योजना के तहत सरकार की तरफ से साइकिल पाने के लिए लड़की को स्कूल में नौवीं जमात में दाखिला लेना लाजिमी था। 2010 तक 8,71,000 लड़कियां सरकारी रकम से साइकिल खरीद कर अपनी पढ़ाई जारी रखे हुए हैं। साइकिल के लिए लड़की को स्कूल से 2000 रुपए नकद मिलते हैं और उसे साइकिल खुद खरीदनी होती है। साइकिल पाने के लिए गरीबी रेखा से नीचे होना जरूरी नहीं है।

ओडीशा के मुख्यमंत्री नवीन पटनायक ने बिहार की इस बालिका साइकिल योजना की सफलता से प्रभावित होकर हाल में इसे अपने राज्य में आगामी 2011-2012 शिक्षा सत्र से शुरू करने का फैसला लिया है। साइकिल के पहियों के घूमने के साथ-साथ लड़कियों के सपने घूमने लगते हैं और फिर उन सपनों को हकीकत में बदलने पर आमादा ये लड़कियां साइकिल को खुद की आजादी का प्रतीक मान लेती हैं। ऊंचे चक्कों वाली साइकिल अपने पुराने मॉडल को पार कर जब नए अंदाज में सामने आई और सुरक्षित व लोकप्रिय हो गई तब महिलाओं ने भी इसका इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। नारीवादियों ने इसे 'फ्रीडम मशीन' का नाम दिया। यह भी कहा गया कि साइकिल ने स्त्री की शख्सियत को जितना बदला है, उतना सारे सुधार आंदोलन मिलकर भी नहीं बदल सके।

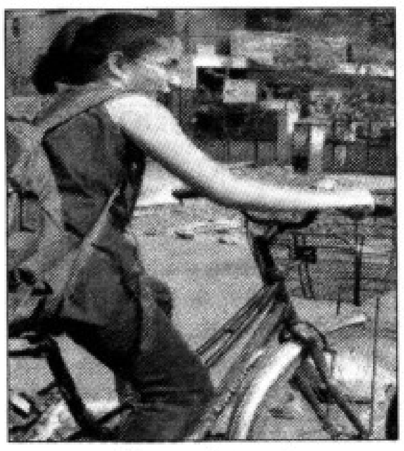

एक साइकिल से कई लक्ष्य हासिल होते नजर आए। साइकिल से लड़कियों और महिलाओं में पैठ बनाकर उनका वोट हासिल करने में आसानी, उन्हें अपना समर्थक बनाना, बालिका शिक्षा के आंकड़ों में सुधार कर खुद को नारी सशक्तीकरण का पैरोकार सिद्ध करना, आदि।

अपने देश में दक्षिण भारत के एक राज्य की एक महिला आईएएस अधिकारी ने गांवों की महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए साइकिल सिखाने वाला प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू किया। गांव में रोजी-रोटी कमाने का कोई स्थायी साधन नहीं था व गांव से बाहर दूर जाना आसान नहीं था, ऐसे में उस महिला अधिकारी को साइकिल की उपयोगिता याद आई और कुछ दिनों के बाद साड़ी पहने महिलाएं साइकिल चलाती नजर आने लगीं। लड़कियों ने भी सीख लिया। उन्हें साइकिल ने आजादी का अहसास कराया। लड़कियों को साइकिल देकर क्या-क्या हासिल किया जा सकता है, यह बात राजनीतिज्ञों को समझ आ गई। एक साइकिल से कई लक्ष्य हासिल होते नजर आए। साइकिल से लड़कियों और महिलाओं में पैठ बनाकर उनका वोट हासिल करने में आसानी, उन्हें अपना समर्थक बनाना, बालिका शिक्षा के आंकड़ों में सुधार कर खुद को नारी सशक्तीकरण का पैरोकार सिद्ध करना व अनुदान पाना, आदि। यूं तो बिहार की साइकिल योजना से पहले राजस्थान व हरियाणा सरकार ने अपने-अपने राज्य में इस योजना की शुरुआत की थी, पर वहां हर जरूरतमंद को इसका लाभ नहीं मिल पा रहा है। ढाई साल पहले राजस्थान के जोधपुर जिले के उदयसुर गांव की 12 वर्षीय फूला की हत्या उसकी मां ने इसलिए कर दी थी क्योंकि वह पांचवी की पढ़ाई पूरी करने के बाद आगे पढ़ने की जिद कर रही थी। गांव में प्राइमरी तक ही स्कूल था और फूला की मां उसे दूसरे गांव में पढ़ाई के लिए भेजने के पक्ष में नहीं थी। पिता के पास साइकिल खरीदने के पैसे नहीं थे। फूला की रोजाना ज़िद से तंग आकर एक दिन उसकी मां ने उसे बेलन से इतनी जोर से मारा कि उस बच्ची की मौत हो गई। फूला बच सकती थी, अगर सरकारी साइकिल योजना पर सही तरह से अमल किया गया होता। राजस्थान सरकार ने 2005 में उन लड़कियों को मुफ्त साइकिल देने की योजना शुरू की थी, जिनके गांव में प्राइमरी स्कूल से आगे पढ़ने की व्यवस्था नहीं थी। देश के ग्रामीण इलाकों में शिक्षा का स्तर जानने संबंधी हाल में जारी एक रपट में बताया गया है कि राजस्थान में लड़कियों के स्कूल जाने की स्थिति अब भी खराब है।

कन्या भ्रूण हत्या के लिए बदनाम हरियाणा सरकार यूं तो अपनी उपलब्धियों को मीडिया के जरिए लोगों तक पहुंचाने वाले सरकारी विज्ञापनों में इसका ढिंढोरा पीटती है, लेकिन गुड़गांव जिले के एक सरकारी स्कूल के प्रिंसिपल ने बताया कि उनके स्कूल में कुछेक को ही साइकिल मिली है। एक सर्वेक्षण के मुताबिक बिहार में साइकिल के लिए लड़कियों को जो रकम दी गई, उनमें से 92 फीसदी ने उसका उपयोग साइकिल खरीदने के लिए किया।

अब देखना यह है कि नवीन पटनायक के राज्य ओडीशा में इस साल से जब नौवीं जमात में दाखिला लेने वाली लड़कियों को सरकार साइकिल देगी तो वहां से इसके वितरण और प्रभाव की क्या खबरें आती हैं।

alkaarya2001@gmail.com

# रस्मी न रह जाए महिलाओं पर चिंता

**मेरे ख्याल से महिलाओं को खुद अपनी क्षमता आंकनी होगी। जो महिलाएं कामकाजी नहीं हैं उन्हें खुद को आत्मनिर्भर बनाने के लिए कोई न कोई व्यावसायिक प्रशिक्षण हासिल करना चाहिए। उन्हें कारोबार सीखना चाहिए। उन्हें मार्केटिंग और बैंकिंग में अपने पांव मजबूत करने चाहिए। सबसे बड़ी जरूरत महिलाओं को पहले अपनी स्थिति सुधारनी है और उसके बाद उन्हें दूसरों की मदद के लिए भी आगे आना है। इसके लिए उन्हें इसी 8 मार्च से अपनी शुरुआत कर देनी चाहिए**

■ किरण बेदी
पूर्व आईपीएस अफसर

आठ मार्च को अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के नजदीक आते ही, हरेक साल महिला की समस्याओं और उससे जुड़ी चिंताओं की बात होने लगती है। दिवस के एक सप्ताह पहले और एक सप्ताह बाद तक समाज में महिलाओं की स्थिति, कन्या भ्रूण हत्या, लड़कों के मुकाबले लड़कियों की उपेक्षा, अहम जगहों पर महिलाओं की नगण्य उपस्थिति, संसद में अरसे से लंबित 33 प्रतिशत महिला आरक्षण बिल, ग्राम पंचायतों में महिलाओं का प्रदर्शन, महिला सुरक्षा और महिलाओं पर होने वाले अपराधों पर सेमिनार और बैठक इस साल भी होंगे। लेकिन मेरे ख्याल से, इस साल इन सबके अलावा एक ठोस योजना की जरूरत है जिसके जरिए महिलाएं अपने सामूहिक शक्ति को समझें और अहम समस्याओं के निपटारे के लिए एक मंच पर एकत्रित हो सकें। इसमें एक निश्चित तौर पर भ्रष्टाचार के खिलाफ मुहिम हो सकती है। चाहे वह छोटे स्तर पर ही क्यों न हो, चाहे वह प्रशासन में हो या फिर राजनीति, कहीं भी महिलाओं को भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई शुरू करनी चाहिए क्योंकि मुझे लगता है कि देश की ज्यादातर समस्याओं की जड़ में यही भ्रष्टाचार काम कर रहा है। इसी भ्रष्टाचार की मार आम लोगों पर पड़ती है।

इसके कारण ही सरकारी कमचर्चारी अपनी सेवाओं के प्रति प्रतिबद्ध नहीं रह पात्र है। इसकेकारण ही वह हमेशा बाहरी कमाई पर ध्यान देने लगता है। अब तक महिलाएं इस दिशा में सक्रिय नहीं हुई हैं लेकिन मुझे लगता है कि अब वक्त आ गया है जब महिलाओं को भी इस तरह की लड़ाइयों के मुख्य स्टेज पर आना चाहिए। महिलाओं की सक्रियता से ही हम समाज में स्वच्छ और साफ-सुथरे प्रशासन को ला सकते हैं। इसलिए मैं तो चाहती हूं कि इस महिला दिवस पर महिलाएं कुछ संकल्प लें। मसलन, प्रत्येक महिला यह तय कर ले कि उसे प्रशासन और सरकारी कामकाज के सम्बन्ध में अपनी जानकारी बढ़ानी है। इसके लिए उन्हें समाचार सुनना होगा, बहसों को सुनना होगा, समाचार पत्र-पत्रिकाएं पलटनी होंगी। महिलाओं को हर हाल में अपनी राजनीतिक, आर्थिक, और कानूनी मसले पर अपनी जानकारी को बेहतर करना होगा। उन्हें राजनीति में क्या हो रहा है, अदालतों में क्या हो रहा, सामाजिक संगठन किस मुद्दे की बात कर रहे हैं, इन्हें न केवल जानना होगा बल्कि उन्हें समझना भी होगा।

ग्रामीण इलाकों में रह रही महिलाओं को नवीनतम सरकारी ग्रामीण योजनाओं की जानकारी होनी चाहिए ताकि वे इन योजनाओं से मिलने वाली सुविधाओं की मांग कर सकें और उसका फायदा उठा सकें। उन्हें यह काम अपने दम पर करना होगा ताकि कोई उनके साथ धोखाधड़ी न करे। स्वंय सेवी सहायता समूह बनाकर उसके जरिए खुद को सक्रिय बनाना होगा। शहरी महिलाओं को अपनी वार्ड की राजनीति तक पर ध्यान देना होगा। वे किस सदस्य को अपना प्रतिनिधि बना रही हैं और वह शख्स उनके इलाके में क्या-क्या काम कर सकता है, इस पर ध्यान देना होगा। आप जिसे मत देकर अपना प्रतिनिधि चुनती हैं, उसका काम है कि वे आपके इलाके में स्कूल की समुचित व्यवस्था कराए। एक कूड़ा घर बनाए, सफाई कर्मचारियों की मौजूदगी सुनिश्चित करें, नियमित पानी और बिजली की आपूर्ति, सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था, पुलिस बल की तैनाती, व्यावसायिक प्रशिक्षण की सुविधा और स्वास्थ्य केंद्र का लाभ मुहैया कराए।

समाज में एक राय यह भी है कि महिलाओं के साथ होने वाले अपराधों में दोषियों को जल्दी सजा नहीं मिल जाती है लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि कानून अपना काम नहीं कर रहा है। जहां तक कानून की बात है तो मैं तो महिलाओं से अपील करती हूं कि वे बस दो ही कानून का ख्याल रखें। सरकारी कामकाज का उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करने के लिए सूचना का अधिकार और घरेलू हिंसा निषेध कानून। इन दो कानूनों से सामाजिक स्तर पर महिलाओं को कहीं ज्यादा ताकतवर बनाया जा सकता है। इसके लिए जरूरी है कि महिलाएं इन दोनों कानूनों की मोटी-मोटी बातों को बेहतर ढंग से समझ लें। मुझे लगता है कि महिलाएं अगर इन दोनों कानूनों का इस्तेमाल करने लगेंगी उस दिन उन पर होने वाले अपराध अपने आप काफी कम हो जाएंगे। महिलाएं अगर चाहें तो अपने युवा बच्चों को भी सशक्त बना सकती हैं।

उन्हें अपने बच्चों को समुचित शिक्षा देकर सशक्त बनाने की कोशिश करनी चाहिए। स्कूलों में भी प्राथमिक स्तर पर ज्यादातर शिक्षकें महिलाएं होती हैं। वे जिस तरह की शिक्षा बच्चों को देंगी, वैसा ही भविष्य भारत का बनेगा। तो मेरे ख्याल से इस साल महिलाओं को खुद अपनी क्षमता आंकनी होगी। जो महिलाएं कामकाजी नहीं हैं उन्होंने खुद को आत्मनिर्भर बनाने के लिए कोई न कोई व्यावसायिक प्रशिक्षण हासिल करना चाहिए। उन्हें कारोबार सीखना चाहिए। मार्केटिंग और बैंकिंग में अपने पांव मजबूत करने चाहिए। इस दिशा में स्वयंसेवी सहायता समूह बेहतर कर सकते हैं। हमें यह समझना होगा कि देश की सभी महिलाओं की हालात एक समान नहीं है। कुछ को अवसर मिलते हैं तो कुछ तक पहुंचते ही नहीं। जिन्हें मिलते हैं, उन्हें इसका पूरा फायदा उठाना चाहिए। जिन तक नहीं पहुंचते हैं, उन्हें अवसर तक पहुंचना होगा। उन्हें अवसर की मांग करनी होगी। सबसे बड़ी जरूरत महिलाओं को पहले अपनी स्थिति सुधारनी है और उसके बाद उन्हें दूसरों की मदद के लिए भी आगे आना है। इसके लिए उन्हें इसी 8 मार्च से अपनी शुरुआत कर देनी चाहिए।

■ प्रदीप कुमार से बातचीत पर आधारित

# कहां गए कामगार महिलाओं के हक

■ कुमुदिनी पति
प्रख्यात सामाजिक कार्यकर्त्ता

महिला दिवस के 100 वर्ष पूरे हुए हैं तो महिलाओं को जायज़ा लेना है कि जो हक सैकड़ों वर्षों में हासिल किया था, उसमें से कितना बच पाया है। महिला दिवस का इतिहास श्रमिक महिलाओं के जुझारू संघर्ष की गाथा है, जो 20वीं सदी से शुरू हुई। न्यूयॉर्क में 1908 में हज़ारों औरतें 8 घंटे काम, बेहतर वेतन और मताधिकार की मांग के लिए उतरीं थीं। इसके बाद 1910 में कोपेनहेगेन में एकत्र 17 देशों की महिलाओं ने हर वर्ष महिला दिवस मनाने का निर्णय लिया। 1911 में लाखों महिलाएं विश्व भर में संघर्ष का बिगुल बजाने लगी थीं और प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व शांति के लिए अभियान भी महिला दिवस का एजेंडा बना।

अब संयुक्त राष्ट्र ने 2011 के लिए नारा तय किया है : *शिक्षा, ट्रेनिंग, विज्ञान और तकनीकी में महिलाओं को बराबर अवसर-महिलाओं के लिए सम्मानजनक काम की कुंजी'*। इस नारे से हम समझ सकते हैं कि आज फोकस है महिलाओं को देश के एक बड़े वर्क फोर्स में तब्दील करना। तभी महिला परिवार व देश की अर्थव्यवस्था में निर्णयकारी भूमिका अदा करेगी। वैश्वीकरण व मंदी के दौर में जिस किस्म के काम का विस्तार हो रहा है वह है गैर-परम्परागत काम, जिसमें महिलाओं की ज़रूरत है।

### कुशल श्रमिकों के अधिकार पर हो जोर

दरअसल, यह फ्लेक्सिटाइम वर्क का दौर है, दौर है स्पेशल इकोनॉमिक ज़ोन्स और एक्सपोर्ट प्रोसेसिंग ज़ोन्स का, बी.पी.ओ. और आउटसोर्सिंग का, 'कैजुअल' श्रम का, गृह-आधारित उद्योगों का, निर्माण कार्य का, मनोरंजन और विज्ञापन का, तथा ब्यूटी बिज़नेस का, जहां सबसे अधिक महिला श्रमिक होंगी। आज देश के 94 प्रतिशत से अधिक श्रमिक असंगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं और इनमें से 14.8 करोड़ महिलाएं हैं। पर कुशल श्रमिकों के अधिकार लगातार कम हो रहे हैं। इसे निश्चित ही महिला दिवस का एजेंडा बनाना होगा। शायद हम सबने सुना होगा कि कैसे देश के रेडीमेड कपड़ों का सबसे बड़ा उत्पादक तिरुपुर, आज सबसे अधिक आत्महत्याओं के लिए जाना जाता है। 8,000 यूनिटों के इस विशाल औद्योगिक इलाके में 2 वर्षों से हर माह 40-50 आत्महत्याएं होती रहीं क्योंकि वहां के श्रमिक गरीबी, अत्यधिक काम, कर्ज़, बदतर होती काम की स्थितियों और अधिकारों के हनन से परेशान होकर पत्नियों-बच्चों सहित अपने जीवन का अंत करना ही निजात पाने का रास्ता समझ रहे हैं। इलेक्ट्रानिक्स सामान निर्माता फॉक्सकॉन व अन्य एस.ई.ज़ेड. में, या वालमार्ट में, जहां महिलाओं की बड़ी संख्या है, लेबर कानून लागू करने की लड़ाई जारी है।

### उपेक्षित हैं महिलाओं के हित

अभी जनवरी में नोकिया की श्रीपेरम्बुदुर (तमिलनाडु) स्थित कम्पनी में एक भयानक हादसा हुआ। अम्बिका नाम की एक श्रमिक का सिर लोडर मशीन के बाक्स में फंस गया जब वह उसे ठीक करने लगी। खून से लथपथ अम्बिका को बचाने की गुहार लगाते वर्करों को 'पॉवर स्विच' बंद करने नहीं दिया गया क्योंकि काम प्रभावित होता। अम्बिका की गर्दन और सिर कुचल गये और वह मर गयी। मजदूरों का कहना है कि 'सबसे अधिक हैंडसेट बनाने वाला यह उद्योग अपनी मशीनों की मरम्मत तक नहीं करवाता जबकि कभी किसी की भी जान जा सकती है।' फिर, बी.पी.ओ. में काम करने वाली महिलाओं के साथ बलात्कार और हत्या की कितनी घटनाओं के बाद भी इनके प्रति संवेदना नहीं बढ़ी है।

### अमानवीयता-शोषण पर पर्दा डालने की कोशिश

आई.टी. क्षेत्र में 88 प्रतिशत युवतियां यौन उत्पीड़न सहती हैं- औरतों की सुरक्षा व जीवन से ऊपर है मुनाफा। मुनाफे की बात करें तो सेक्स वर्क एक बड़ा व कमाऊ उद्योग बन गया है। यहां एड्स का खतरा लगातार बना रहता है, और विडम्बना है कि अब सेक्स वर्क को वैधानिकता प्रदान करने के प्रयास से वेश्यावृत्ति की अमानवीयता और शोषण पर पर्दा डाला जा रहा है। वर्तमान समय में

**संयुक्त राष्ट्र ने 2011 के लिए नारा तय किया है : 'शिक्षा, ट्रेनिंग, विज्ञान और तकनीकी में महिलाओं को बराबर अवसर-महिलाओं के लिए सम्मानजनक काम की कुंजी'। इस नारे से हम समझ सकते हैं कि आज फोकस है महिलाओं को देश के एक बड़े वर्क फोर्स में तब्दील करना। तभी महिला परिवार व देश की अर्थव्यवस्था में निर्णयकारी भूमिका अदा करेगी। वैश्वीकरण व मंदी के दौर में जिस किस्म के काम का विस्तार हो रहा है वह है गैर-परम्परागत काम, जिसमें महिलाओं की ज़रूरत है**

मेक्सिको, थाईलैंड, कम्बोडिया और ब्राज़ील, यहां तक कि भारत जैसे देश सेक्स टूरिज़्म के लिए कुख्यात हो गए हैं। 2009 में हमारे देश में नेपाल से करीब 13 हज़ार लड़कियां सेक्स वर्क के लिए लायी गयी थीं। क्या हम इस पर चुप्पी साधे रहें?

काम की दृष्टि से और एक व्यापक क्षेत्र है कृषि, जहां महिलाएं बड़ी तादाद में पहले काम पाती और करती रहीं। आज खाद्यान्न उत्पादन पर जोर घट रहा है और कॉमर्शियल यानी वाणिज्यिक या निर्यात के लिए खेती तथा हॉर्टीकल्चर पर जोर बढ़ रहा है। यह नतीजा है खेती और उससे जुड़े तमाम परम्परागत कामों में औरतों की भूमिका का नगण्य हो जाना। हालांकि कृषि संकट के गहराने से सैकड़ों कृषक परिवार आत्महत्या करने लगे जिसके कारण परिवार महिलाओं के कंधे पर चलने के लिए मजबूर हुए हैं। अधिकतर मामलों में विपन्नता के कारण पूरे के पूरे परिवार को पलायनकर ईंट भट्ठों व निर्माण कार्य के स्थलों पर काम ढूंढना पड़ा, जिसने महिलाओं को सबसे अधिक प्रभावित किया है। कृषि विकास की दर भी लगातार घट रही है। आज भूमि का उपयोग विशेष आर्थिक क्षेत्रों, बड़े उद्योगों, फ्लाईओवर, हवाई अड्डों, बड़ी विकास योजनाओं आदि के निर्माण के लिए होने की स्थिति है, और जंगल पर आदिवासियों तथा गरीबों का अधिकार खत्म होने की हालत में भी महिलाएं गरीब और असुरक्षित हो रही हैं।

### कानून का संकीर्ण नजरिया

महिला श्रमिकों के लिए विस्तारित होने वाले क्षेत्र हैं निर्माण और घरेलू श्रम। घरेलू कामगारिनों की एक बड़ी संख्या (उपलब्ध ताजा आंकड़ों के अनुसार- 3,68,650 श्रमिक) दूसरे देशों में कार्यरत हैं। इनकी स्थिति दयनीय है, क्योंकि इनकी सुरक्षा के लिए कोई कानून नहीं है। यद्यपि भारत में कानून बन चुका है, यह अधिकारों की कम, कल्याण की बात ज़्यादा करता है जिसके लिए कामगारिन को पैसे भी भरने होंगे। कानून के तहत यौन उत्पीड़न की अधिकतम सज़ा छः माह का कारावास है, पर कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न विरोधी कानून इन पर लागू ही नहीं होता, जबकि मालिकों द्वारा जघन्यतम उत्पीड़न के मामले कई बार देश की राजधानी से आए हैं।

### मनरेगा में भी महिलाएं ही ज्यादा कष्ट में

निर्माण के क्षेत्र में भी महिला मज़दूरों की संख्या लगातार बढ़ रही है और अब 1.5 करोड़ से ऊपर पहुंच चुकी है। बिना स्थायी घर, सड़क पर बच्चों को सुलाकर भी काम करती हैं ये। यौन शोषण तो काम के स्वभाव में निहित है और पुरुषों से हमेशा कम मज़दूरी मिलती है। नरेगा (अब मनरेगा) यू.पी.ए. सरकार की फ्लैगशिप स्कीम है, पर यहां भयंकर भ्रष्टाचार के चलते औरतों की स्थिति सबसे ज्यादा खराब है। जॉब कार्ड मिल भी गया तो काम नहीं है, या मज़दूरी देने में घोर अनियमितताएं हैं। गांव में कठिन श्रम कर रही आंगनबाड़ी सेविकाओं तथा 'आशा' वर्करों को भी सरकारी कर्मचारी का दर्ज़ा नहीं दिया गया।

### संघर्ष के लिए कसनी होगी कमर

2007 में असंगठित श्रमिकों के लिए देश में सामाजिक सुरक्षा कानून बना था। पर आज भी सामाजिक सुरक्षा कानूनी हक नहीं है, न ही इसके लिए वित्तीय प्रबंध है। 90 प्रतिशत श्रमिक गरीबी रेखा सीमा (बी.पी.एल.) के अंतर्गत आए नहीं तो वे तमाम योजनाओं से बाहर रहेंगे। इसकी प्रमुख वजह यह है कि इसमें अनिवार्य पंजीकरण का प्रावधान नहीं है और कानून का पूरा दारोमदार सलाहकार समिति के जिम्मे छोड़ दिया गया है। पर कब तक हम बिखरी हुई लड़ाइयों में फंसे रहेंगे? चुनौती है इस विशाल जनसंख्या के मुद्दों को राजनीति की मुख्यधारा में लाना, सो महिला दिवस एक दिन का जश्न नहीं, संघर्ष के लिए कमर कसने का दिन है। ■

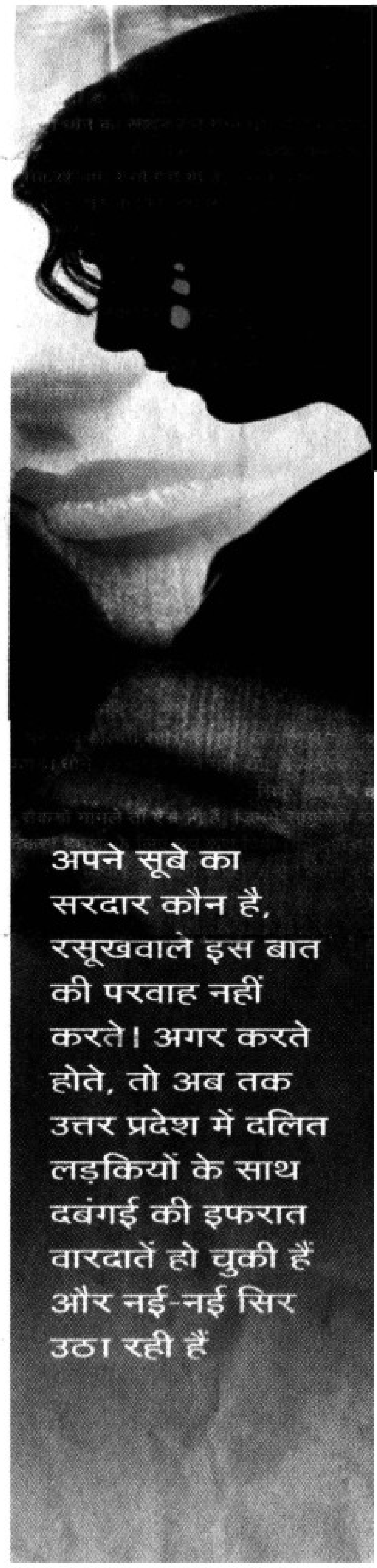

# यौन हिंसा की शिकार दलित स्त्री

**दैहिक शोषण की शिकार महिलाओं की संख्या में गिरावट की बजाय, दुर्भाग्य से उसमें इजाफा ही हो रहा है। यहां तक कि खास वर्ग की महिलाओं और लड़कियों के साथ बलात्कार की घटनाएं बढ़ रही हैं। नाबालिग लड़कियों के साथ रेप आये दिनों की बात हो चुकी है, सामूहिक बलात्कार भी सुर्खियों में हैं। गांवों के खेतों में ही नहीं, छोटे-बड़े शहरों की गलियों तक में लड़कियां शिकार बनायी जा रही हैं**

> अपने सूबे का सरदार कौन है, रसूखवाले इस बात की परवाह नहीं करते। अगर करते होते, तो अब तक उत्तर प्रदेश में दलित लड़कियों के साथ दबंगई की इफरात वारदातें हो चुकी हैं और नई-नई सिर उठा रही हैं

■ **अरविन्द जैन**

**दलितों** का प्रतिनिधित्व करने वाली मुख्यमंत्री (बहन मायावती) के राज (उत्तर प्रदेश) में दलित महिलाएं ही सुरक्षित नहीं हैं, सुनकर थोड़ा अजीब लगता है। राज्य में शायद ऐसा कोई गांव-शहर नहीं बचा है, जहां यौन हिंसा की शिकार लड़कियां, न्याय और क़ानून-व्यवस्था पर सवाल नहीं उठा रही हों, ऐसी घटनाएं लगातार बढ़ती जा रही हैं। सरकारी आंकड़ों के अनुसार, दलितों पर अत्याचार (हत्या, हिंसा,यौन-हिंसा) में उत्तर प्रदेश पूरे भारत में सबसे आगे है। हालांकि महिला मुख्यमंत्री, शीला दीक्षित की दिल्ली में भी यौन हिंसा के मामले लगातार बढ़ रहे हैं।

सवाल है कि दलित महिला मुख्यमंत्री के राज में भी दलितों (लड़के और लड़कियों) के साथ ही अत्याचार-अन्याय क्यों हो रहा है? पुलिस क्यों नहीं सुनती? पुलिस दलितों को क्यों डराती-धमकाती है? मुकदमा दर्ज करने की बजाय, समझौता करने का दबाव क्यों डालती है? दलितों पर अत्याचार के आरोपियों को सजा क्यों नहीं मिलती? दलित लड़कियों से बलात्कार या बलात्कार के बाद हत्या के अनेक मामला सामने हैं। फतेहपुर में तीन लोगों ने दलित कन्या को बलात्कार का शिकार बनाने की कोशिश की और विरोध करने पर लड़की के हाथ, पांव और कान काट डाले। पीड़ित कानपुर के अस्पताल में मौत से जूझ रही है। जैसाकि अमूमन होता है, पारिवारिक झगड़े और रंजिश का बदला मासूम-निर्दोष लड़की की अस्मत से लिया गया।

> सैकड़ों मामले तो ऐसे भी हैं, जिनमें सामूहिक बलात्कार की शिकार दलित या आदिवासी लड़कियों को डरा-धमका कर (या 1000-2000 रुपए देकर) हमेशा के लिए चुप करा दिया गया। मां-बाप को गांव से बाहर करने और जेल भिजवाने की धमकी देकर, पुलिस और गुंडों ने सारा मामला ही दफना दिया

बांदा बलात्कार मामले में आरोपी विधायक पुरुषोत्तम नरेश द्विवेदी ने तो दलित नाबालिग लड़की को मामूली चोरी के इल्जाम में जेल ही भिजवा दिया था। बांदा बलात्कार मामला अभी सुलझा भी नहीं था कि लखनऊ के चिनहट इलाके में ईंट-भट्ठे के पीछे एक और दलित लड़की की लाश पड़ी मिली। लड़की की बलात्कार के बाद, उसी के दुपट्टे से गला घोंटकर हत्या कर दी गई।

शिवराजपुर गांव की सोलह वर्षीय नाबालिग दलित लड़की के साथ सामूहिक बलात्कार का मामला भी प्रकाश में आया है। बिराज्मार गांव की 8 साल की दलित बालिका की दरिंदों ने बलात्कार के बाद हत्या की परंतु महीनों कोतवाल ने कोई कार्रवाई तक नहीं की, उल्टे घरवालों को ही डराना-धमकाना और गुमराह करना जारी रहा। कन्नौज जिले के सौरिख क्षेत्र में बीस वर्षीय दलित लड़की गांव से बाहर खेत में गई थी, जहां तीन युवकों ने उसके साथ बलात्कार किया। बाराबंकी में नौवी क्लास की नाबालिग लड़की से बलात्कार किया गया लेकिन पुलिस ने सिर्फ छेड़छाड़ का मामला दर्ज किया। सुल्तानपुर के दोस्तपुर इलाके में एक महिला को जिंदा जलाने की कोशिश की गई, जिसका अस्पताल में इलाज चल रहा है। मुरादाबाद और झांसी में बलात्कार की शिकार हुई लड़कियों ने खुद को आग लगा ली। कानपुर और लखनऊ में भी बलात्कार की शिकार दो नाबालिग लड़कियां मौत की नींद सो गईं।

ठेकमा (आजमगढ़) कस्बे में सोमवार की रात करीब 12 बजे चार वहशी दरिंदों ने दलित के घर में घुसकर वहां सो रही 28 वर्षीया मंद-बुद्धि युवती की इज्जत लूट ली। ठाकुरद्वारा (मुरादाबाद) के गांव कंकरखेड़ा में दो युवकों ने तमंचों के बल पर दलित युवती से बलात्कार किया। सलेमपुर (देवरिया) में दलित युवती के साथ तीन दरिंदों ने दुपट्टे से हाथ-पैर बांध कर सामूहिक दुष्कर्म किया, पर पुलिस एक सप्ताह तक मामले पर पर्दा डालती रही। मैनपुरी के ग्राम नगला देवी में कामांध युवक ने दलित नाबालिग युवती, जो अपने घर से गांव स्थित परचून की दुकान से कपड़ा धोने का साबुन लेने गयी थी, से बलात्कार किया और एटा के बागवाला क्षेत्र में कुछ युवकों ने तमंचे के बल पर महिला की अस्मत लूट ली। यह सिर्फ संक्षेप में कुछ ही दुर्घटनाएं हैं...विस्तृत आंकड़ों में जाने की जरूरत नहीं।

सैकड़ों मामले तो ऐसे भी हैं, जिनमें सामूहिक बलात्कार की शिकार दलित या आदिवासी लड़कियों को डरा-धमका कर (या 1000-2000 रुपए देकर) हमेशा के लिए चुप करा दिया गया। मां-बाप को गांव से बाहर करने और जेल भिजवाने की धमकी देकर, पुलिस और गुंडों ने सारा मामला ही दफना दिया। अखबारों में छपी तमाम खबरें झूठी साबित हुईं...पत्रकारों पर मानहानि के मुकदमें दायर किये गए, गवाहों को खरीद लिया गया और न्याय- व्यवस्था की आंखों में धूल झोंक कर अपराधी साफ बच निकले। 'माथुर' से लेकर 'भंवरी बाई' केस के शर्मनाक फैसले अदालतों से समाज तक बिखरे पड़े हैं।

सत्ता में लगातार बढ़ रहे दलित वर्चस्व के कारण, आहत और अपमानित कुलीन वर्ग के हमले, दलित स्त्रियों के साथ हिंसा या यौन हिंसा के रूप में बढ़ रहे हैं। समाज और नौकरशाही में अब भी कुलीन वर्ग का बोलबाला है। राजनीति में अपनी हार का बदला, दलितों पर अत्याचार के माध्यम से निकाला जा रहा है। दोहरा अभिशाप झेलती दलित स्त्रियां इसलिए भी बेबस और लाचार हैं, क्योंकि उनके अपने नेता, सत्ता-लोलुप अंधेरे और भ्रष्टाचार के वट- वृक्षों के मायाजाल में उलझ गए हैं। ऐसे दहशतजदा माहौल में, आखिर दलित स्त्रियों की शिकायत कौन सुनेगा और कैसे होगा इंसाफ?

**(लेखक स्त्रीवादी और सुप्रीम कोर्ट के वरिष्ठ वकील हैं)** ■

# भेदभाव का शिकार

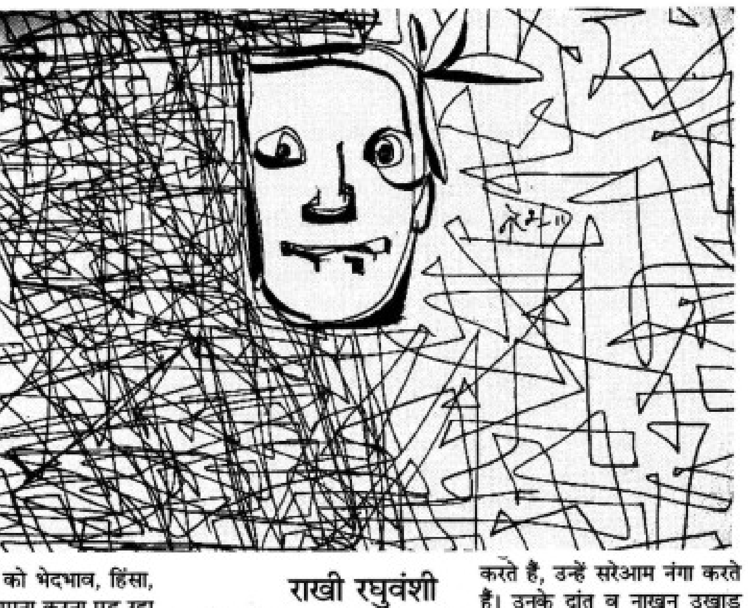

**राखी रघुवंशी**

**द**लित महिलाओं की स्थिति पर अक्सर मीडिया का ध्यान तब जाता है जब वे अत्याचार की शिकार होती हैं। उनके साथ बलात्कार की घटना होने या उनके नग्न या अर्द्धनग्न घुमाए जाने को लेकर मीडिया की सक्रियता देखते ही बनती है। इलेक्ट्रानिक मीडिया तो इस तरह की खबरों को और भी बढ़ा-चढ़ा कर पेश करता है। ऐसी शर्मनाक घटनाओं की रिपोर्टिंग के बाद उनका फॉलोअप बहुत ही कम किया जाता है। दरअसल आजादी के छह दशक बाद भी दलित महिलाओं को भेदभाव, हिंसा, सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ रहा है। अपने देश में करीब बीस करोड़ दलित हैं, उनमें दस करोड़ दलित महिलाएं हैं। अच्छी खासी तादाद के बावजूद वे सामाजिक, आर्थिक, व राजनीतिक मोर्चे पर हाशिए पर हैं। सवर्ण जातियों की पेशेवर महिलाएं ऊंचे अहोदों पर ही नहीं हैं बल्कि ऐसी जातियों में कामकाजी महिलाओं की संख्या स्पष्ट दिखाई देती है। लेकिन पढ़ी-लिखी कामकाजी दलित महिलाओं की संख्या निराशाजनक है। रोजगार बाजार से बाहर रहने का मतलब उनकी क्षमताओं, संभावनाओं का कत्ल करना है। दरअसल दलित महिलाएं कुछ खास किस्म की हिंसा की शिकार होती हैं। ऊंची जाति के मर्द अक्सर दलित पुरुषों से बदला लेने के लिए उनके समुदाय की औरतों का बलात्कार करते हैं, उन्हें सरेआम नंगा करते करते हैं, उन्हें सरेआम नंगा करते हैं। उनके दांत व नाखून उखाड़ दिए जाते हैं। उन्हें डायन घोषित कर गांव से बेदखल करना आम बात है और कई बार डायन मान कर हत्या भी कर देते हैं। दक्षिण के मंदिरों में देवदासी प्रथा की शिकार भी दलित लड़कियां ही हैं। दलित महिलाओं के साथ किसी भी प्रकार के भेदभाव को रोकने के जिम्मेवारी राज्य की है।

**▶ प्रसंग**

> **अंतरराष्ट्रीय कानून में इसे स्वीकार किया गया है कि सरकार का काम महज मानवाधिकार संरक्षण के लिए कानून बनाना ही नहीं है बल्कि ठोस पहल करना भी है।**

**अ**पने देश ने कई ऐसी अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संधियों पर हस्ताक्षर किया है जो महिला व पुरुष दोनों की बराबरी की वकालत करते हैं। अंतरराष्ट्रीय कानूनों में यह स्वीकार किया गया है कि सरकार का काम महज मानवाधिकार संरक्षण प्रदान करने वाले कानूनों को बनाना ही नहीं है बल्कि ठोस पहल करना भी है। सरकार का काम ऐसी नीतियां बनाना व बजट में प्रावधान करना है ताकि महिलाएं अपने अधिकारों का इस्तेमाल बिना किसी खौफ के कर सकें। इसके अलावा जाति आधारित हिंसा व भेदभाव करने वालों को सख्त से सख्त सजा देना भी है। इंटरनेशनल कंवेंशन ऑन सिविल एंड पॉलटिकल राइट्स के मुताबिक भारत सरकार का दायित्व ऐसा माहौल बनाना है जिसमें दलित महिलाओं को यंत्रणा, गुलामी, क्रूरता से आजादी मिले, कानून, अदालत के सम्मुख उसकी पहचान एक मानव के नाते हो। वे निजता व जीने के अधिकार का इस्तेमाल कर सके और उन्हें अपनी मर्जी से शादी करने का अधिकार भी है। एक दलित महिला की जिंदगी व सम्मान ऐसे मानवाधिकारों मानवाधिकारों पर बहुत निर्भर करता है। लेकिन अपने लोकत्रांतिक देश में उनके इन मानवाधिकारों का बहुत ही व्यवस्थित तरीके से उल्लंघन देखने को मिलता है। बाल जन्म व विवाह पंजीकरण दलित लड़कियों को यौन उत्पीड़न, तस्करी, बाल मजदूरी, जबरन व छोटी उम्र में शादी से संरक्षण प्रदान करता है

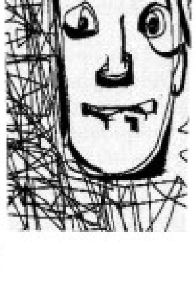

लेकिन अपने देश में बाल जन्म व विवाह पंजीकरण की अनिवार्यता के महत्त्व को सिर्फ अदालतों ने ही समझा है। प्रशासन की लापरवाही व गैर संवदेनशीलता के कारण छयालीस फीसद शिशुओं का जन्म पंजीकरण नहीं हो पाता और इसमें दलित लड़कियों की संख्या ज्यादा होती है। आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों की बात करें तो यहां भी दलित महिलाएं हाशिए पर ही खड़ी हैं। उनके हिस्से ज्यादातर ऐसे काम आते हैं जहां काम की स्थितियां अमानवीय होती हैं। उन्हें न तो सामाजिक संरक्षण मिला होता है और न ही पारिवारिक संरक्षण। स्कूली शिक्षा पर नजर डालें तो अनपढ़ दलित लड़कियों की संख्या चिंता का विषय है। दलित महिलाओं की इस चिंतनीय स्थिति से जुड़े कारण भी बैचेन करने वाले हैं। यह एक हकीकत है कि दलित महिलाओं के साथ सिर्फ ऊंची जाति के लोग ही भेदभाव नहीं करते बल्कि अपने समुदाय के भीतर भी उन्हें कमजोर बनाए रखने की हर संभव कोशिश की जाती है। दलित राजनीति में महिलाओं का वजूद सिर्फ संख्या तक ही सीमित है। महिला आंदोलन में भी दहेज हत्या जैसी सामाजिक समस्याओं पर ही ज्यादा फोकस किया गया। महिला आंदोलन में दलित महिलाओं की आवाज, उनके विद्रोह ज्यादा नजर नहीं आते। इसके अलावा आम दलित महिलाओं को उनके पक्ष में बने कानूनों की जानकारी भी बहुत कम होती है। ☐

# स्त्री बराबरी कैसे कर सकती है?

नारी की वर्तमान स्थिति कतई समानता की सूचक नहीं है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15(3) के अन्तर्गत महिला सुधार और संरक्षण के लिए अनेक अधिनियम बनाये गये और 9 मार्च 2010 को राज्यसभा से महिला आरक्षण बिल भी पारित हुआ, लेकिन 'क', 'ख', 'ग' और 'घ' के समान अनेक महिला हैं, जिनका संघर्ष भारतीय समाज में आज भी प्रथम चरण का है और वह है-'मुझे स्वीकार करो। मैं भी एक व्यक्ति हूं'

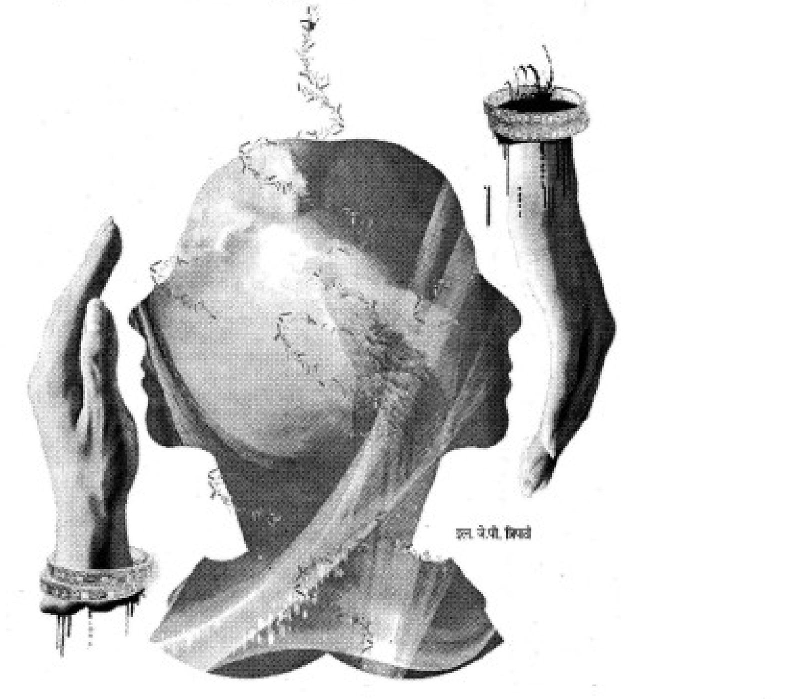

■ कुमुद एल.दास
सुप्रीम कोर्ट में वरिष्ठ अधिवक्ता

'क' आधुनिक भारतीय नारी है। उम्र 27 साल, विवाहित और आर्थिक रूप में स्वावलम्बी। उसकी शादी 2007 में हुई थी। **शादी के बाद एक पुत्र हुआ और उसे शिक्षा-मित्र की नौकरी मिली। अपने दूध पीते बच्चे को छोड़कर जब वह घर से बाहर नौकरी करने निकली तो घर** लौटकर उसे मिला 'घर-निकाला'। इसके पहले जमकर उसकी पिटाई हुई। कुछ दिनों बाद उसके खिलाफ पति ने तलाक का मुकदमा किया। 'क' ने भी अपनी पिटाई, 'घर-निकाला' **को वर्णित करते हुए दहेज की मांग के लिए पति, सास-ससुर के खिलाफ 498(अ) भारतीय** दंड संहिता के तहत घरेलू हिंसा कानून और बेटे के लिए गुजारा भत्ता की मांग करते हुए मुकदमा दायर किया। सारे मुकदमे न्यायालय में लंबित हैं। 'क' का आंशिक आर्थिक स्वावलम्बन, पुत्र के साथ मायके में रहने को समाज ने एक झगड़ालू महिला होने का नतीजा बतलाया। ज्यों-ज्यों मुकदमा बढ़ता गया उसकी सामाजिक मान्यता कम होती गई।

'ख' लंदन में नौकरी करने वाली, लंदन से ही पढ़ी हुई एक वैसी भारतीय नारी है, जिसने अखबार में विज्ञापन देकर सन् 2010 में एक प्रवासी भारतीय से शादी की। पति 14 साल की उम्र से ही अमेरिका में पले-बढ़े थे और शादी के समय हांगकांग के बैंक में एक ऊंचे पद पर कार्यरत थे। जुलाई 2010 में भव्य तरीके से उनकी शादी हुई। शादी के बाद पति-पत्नी विदेश चले गये। हनीमून के तुरंत बाद पति ने पत्नी के बैंक-बैलेंस की पूछताछ शुरू की और जब यह पता चला कि बैंक-बैलेंस औसत है तो पति के व्यवहार में परिवर्तन आने लगा। 'ख' ने आदर्श भारतीय नारी की तरह 'घरेलू-महिला' बनकर जीने का निर्णय किया। पति की नाराजगी कुछ और बढ़ गयी। 'ख' की पाक-कला भी पति को रास नहीं आयी। जब जानकारी न होने के कारण उसने जन्माष्टमी के दिन 'चिकेन' बनाया और खाया तो पति की नाराजगी चरम पर पहुंच गई और पति ने 'ख' से सम्बन्ध-विच्छेद की घोषणा करते हुए भारत के न्यायालय में तलाक का केस दाखिल कर दिया। शादी के मात्र 7 महीने बाद।

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अंतर्गत विवाह के एक साल के बाद ही तलाक का मुकदमा दर्ज होता है लेकिन पति से एक साल पूरा करना भी सम्भव नहीं हो पाया। 'ख' ने कानूनी सलाह देकर दहेज-विरोधी अधिनियम, पति और उसके सम्बन्धियों से प्रताड़ना और घरेलू हिंसा की रोकथाम के अधिनियम के अंतर्गत मुकदमा दर्ज करने का फैसला लिया है। अभी तक 'ख' को समाज के किसी विशेषण से अलंकृत नहीं किया गया है लेकिन एक आदर्श पत्नी और घरेलू-महिला की पर्याप्त सजा उसके पति से उसे मिल चुकी है।

'ग' एक औसत वर्ग की औसत शिक्षा प्राप्त नारी थी परंतु औसत नारी से अधिक सुन्दर और आर्थिक रूप से पूर्ण स्वावलम्बी थी। उसके स्वतंत्र जीने के अंदाज को उसके माता-पिता ने विरोध किया तो वह अलग रहने लगी। किसी पुरुष दोस्त ने आखिरकार समाज का 'कल्याण' करने के उद्देश्य से ऐसी स्वतंत्र नारी की हत्या कर दी। हत्या के दो सप्ताह बाद उसके पिता ने उसकी बरामद लाश की शिनाख्त अपनी बेटी के रूप में की। मुकदम दर्ज हो चुका है और तफ्तीश जारी है। भारतीय समाज में ऐसी 'चरित्रहीन' नारी को जीने का अधिकार ही नहीं था।

'घ' एक कॉल सेंटर में काम करती थी। नाइट ड्यूटी की शिफ्ट में उसकी छुट्टी रात के दो बजे होती थी और कॉल सेंटर की गाड़ी उसके घर के समीप रात को तीन-साढ़े तीन बजे छोड़ती थी। रात की गश्ती और रात में मटरगश्ती करने वाले दोनों ही वर्ग के लोग उसे जानते थे। उसे आधुनिक नारी की पूर्ण परिभाषा प्राप्त थी। विदेशी कपड़े, विदेशी रहन-सहन और आखिरकार मटरगश्ती करने वाले युवकों ने एक रात चलती गाड़ी में से खींचकर उसका रेप कर दिया। एक सुनसान स्थान पर बेहोश अवस्था में छोड़ कर चलते बने। एक सप्ताह बाद एक आरोपित गिरफ्तार हुआ। मुकदमा कोर्ट तक पहुंच गया। साक्ष्य के लिए 'लड़की' कोर्ट में प्रस्तुत नहीं हुई और कोई चश्मदीद गवाह नहीं होने के कारण इकलौते आरोपी को बरी कर दिया गया। इस निर्णय के खिलाफ राज्य ने कोई अपील फाइल नहीं किया।

'क', 'ख', 'ग' और 'घ' चारों ऐसी भारतीय नारी हैं जिन्होंने हर आधुनिक त्योहार जैसे बेलेन्टाइन डे और वूमेन्स डे में हिस्सा लिया है और अपना योगदान दिया है। आधुनिक भारतीय समाज में ये नारियां उपेक्षित और असुरक्षित हैं। नारी की वर्तमान स्थिति कतई समानता का सूचक नहीं है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15(3) के अन्तर्गत महिला सुधार और संरक्षण के लिए अनेक अधिनियम बनाये गये और 9 मार्च 2010 को राज्यसभा से महिला आरक्षण बिल भी पारित हुआ, लेकिन 'क', 'ख', 'ग' और 'घ' के समान अनेक महिला हैं, जिनका संघर्ष भारतीय समाज में आज भी प्रथम चरण का है और वह है- 'मुझे स्वीकार करो। मैं भी एक व्यक्ति हूं।'

प्राचीन काल में कुछ हद तक नारी विशेष को समाज में स्थान और सम्मान दोनों प्राप्त था। प्रातः स्मरणीय प्राचीन नारी आज भी **आदर्श** और पूजनीय हैं क्योंकि उन्होंने अत्याचार और अन्याय का विरोध त्याग और बलिदान से किया- किसी ने पुत्र को खोकर तो किसी ने पवित्रता की परीक्षा देकर। द्रौपदी ने एक प्रश्न किया- नारी व्यक्ति है या वस्तु? उसका उत्तर न मिलने के बाद उसने प्रतिशोध में अपना केस खोल दिया। 13 वर्ष पश्चात् जब द्रौपदी के पतियों के साथ अन्याय हुआ, महाभारत का युद्ध उसका परिणाम हुआ, महाभारत का युद्ध उसका परिणाम हुआ। प्राचीन काल का युद्ध और आज **के विवाद में कोई भूल-चूक परिवर्तन नहीं रहा है- पंचायत हो,** थाना हो या न्यायालय हो, हार अधिकतर आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग का होता है। पुरुष-नारी विवाद में कमजोर वर्ग प्रायः नारी होती है।

भारतीय संस्कृति में नारी शक्ति रूप में विदित है और यहां तक की शक्तिविहीन शिव **'शव' है। प्राचीन निर्देश था, 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'** लेकिन जिन नारियों को पूजा के योग्य स्थान दिया गया है, उनकी विवशता और असहायता की पूजा एक परम्परा सी बन गई है। सीता का अग्नि में स्वेच्छा से प्रवेश करना, अहिल्या का निर्जीव रूप में परिवर्तित होना, मन्दोदरी का पति-विवाद के बावजूद महारानी बनकर जीना, कुन्ती के विवाह से पूर्व प्राप्त पुत्र का जल प्रवाह करना, यह पूजनीय बनने के गुण थे। असहायता पूजनीयता का आधार है। प्राचीन नारी को ज्ञान रूप में, शक्ति रूप में और धन व सम्पदा की अधिष्ठात्री माना गया है। नारी तुम केवल श्रद्धा हो, पूजनीय हो किन्तु असमान हो। जहां प्राचीन नारी एक ऊंचे आसन पर सुसज्जित थी; वहीं आधुनिक नारी समाज में अपना स्थान ढूंढ रही है। नवरात्र में जहां धार्मिक प्रवृत्ति वाले कुमारी पूजन करते हैं तो वहीं समाज कन्या-भ्रूण हत्या को अपराध नहीं मानता है। आज भी नारी की संख्या पुरुष की अपेक्षा कम है।

कागजी तौर पर नारी का प्रतिनिधित्व अवश्य बढ़ गया है। बिजनेस में उनकी बढ़ी तादाद का कारण है इनकम टैक्स में छूट, सम्पत्ति का रजिस्ट्रेशन नारी के नाम पर होने का कारण है स्टाम्प ड्यूटी पर छूट। गांव, पंचायत और वार्ड के स्तर पर एक महिला के आवश्यक प्रतिनिधित्व के कारण यद्यपि सत्ता पर्दे के पीछे पति, पिता या भाई का होता है लेकिन नारी को घर से बाहर जाने का अवसर मिलता है। इसके अलावा कन्या-जन्म पर राजकीय कोष से अनुदान, विधवा पेंशन इत्यादि अवश्य नारी सशक्तिकरण की ओर अग्रसर कदम हैं। संवैधानिक समानता आज भी एक सुन्दर परिकल्पना है। ■

यद्यपि संसद में महिलाओं का प्रतिनिधित्व प्रभावकारी नहीं रहा है; लेकिन लोकसभा चुनावों में उनकी सफलता की दर निर्वाचित होने वाले पुरुष प्रत्याशियों के प्रतिशत की तुलना में ज्यादा रही है

| लोकसभा चुनाव | | | पुरुष | | | महिला | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| वर्ष | सीटों की संख्या | कुल उम्मीदवार | चुनाव लड़े | निर्वाचित | सफलता का प्रतिशत | चुनाव लड़ीं | निर्वाचित | सफलता का प्रतिशत |
| 1952 | 489 | 1,874 | - | - | - | - | - | - |
| 1957 | 494 | 1,519 | 1,474 | 472 | 32.0 | 45 | 22 | 48.9 |
| 1962 | 494 | 1,985 | 1,919 | 463 | 24.1 | 66 | 31 | 47.0 |
| 1967 | 520 | 2,369 | 2,302 | 491 | 21.3 | 67 | 29 | 43.3 |
| 1971 | 518 | 2,784 | 2,698 | 497 | 18.4 | 86 | 21 | 24.4 |
| 1977 | 542 | 2,439 | 2,369 | 523 | 22.1 | 70 | 19 | 27.1 |
| 1980 | 542 | 4,629 | 4,486 | 514 | 11.5 | 143 | 28 | 19.6 |
| 1984 | 542 | 5,312 | 5,150 | 500 | 9.7 | 162 | 42 | 25.9 |
| 1989 | 543 | 6,160 | 5962 | 514 | 8.6 | 198 | 29 | 14.7 |
| 1991 | 543 | 8,668 | 8,342 | 506 | 6.1 | 326 | 37 | 11.4 |
| 1996 | 543 | 13,952 | 13,353 | 503 | 3.8 | 599 | 40 | 6.7 |
| 1998 | 543 | 4,750 | 4,476 | 500 | 11.2 | 274 | 43 | 15.7 |
| 1999 | 543 | 4,648 | 4,364 | 494 | 11.3 | 284 | 49 | 17.3 |
| 2004 | 543 | 5,435 | 5,080 | 498 | 9.8 | 355 | 45 | 12.7 |
| 2009 | 543 | 8070 | 7514 | 484 | 6.4 | 556 | 59 | 10.6 |

## 15 वीं लोकसभा में महिलाओं का दलगत प्रतिनिधित्व

### चुनावों में दावेदारी जीतने की तादाद

| वर्ष | उम्मीदवार | जीतीं | सक्सेस प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| 1957 | 45 | 22 | 48.9 |
| 1962 | 66 | 31 | 47.0 |
| 1967 | 67 | 29 | 43.3 |
| 1971 | 86 | 21 | 24.4 |
| 1977 | 70 | 19 | 27.1 |
| 1980 | 143 | 28 | 19.6 |
| 1984 | 162 | 42 | 25.9 |
| 1989 | 198 | 29 | 14.7 |
| 1991 | 326 | 37 | 11.4 |
| 1996 | 599 | 40 | 6.7 |
| 1998 | 274 | 43 | 15.7 |
| 1999 | 284 | 49 | 17.3 |
| 2004 | 355 | 45 | 12.7 |
| 2009 | 556 | 59 | 10.6 |

1952 का लैंगिक आंकड़ा उपलब्ध नहीं

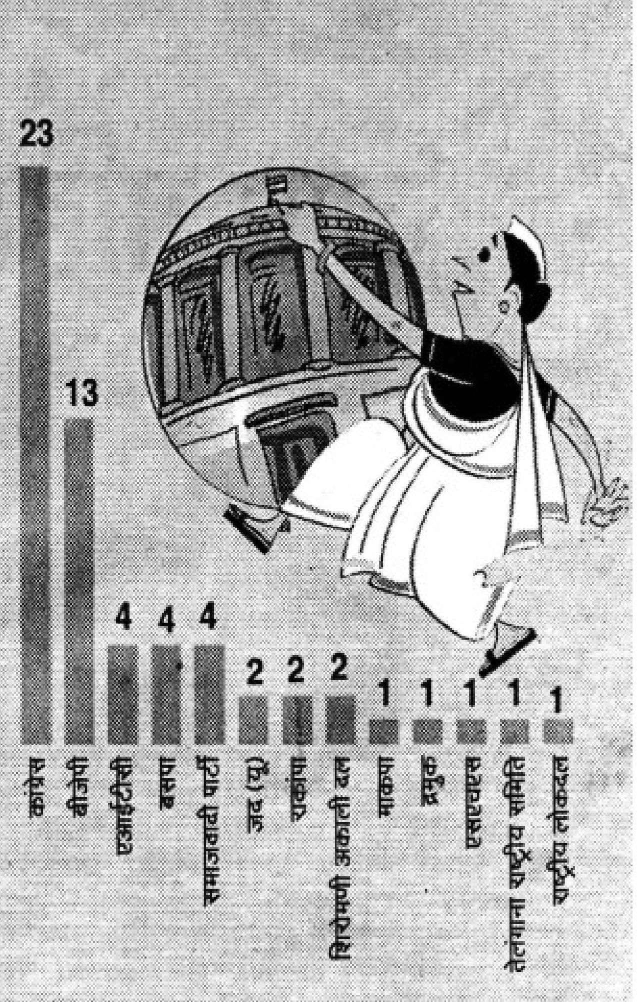

## बजट के मुख्य बिंदु

- कमजोर परिवारों के लिए स्मार्ट कार्ड तैयार और जारी करने के लिए 30 करोड़ रुपये का व्यय प्रस्तावित।
- दिल्ली सरकार के सरकारी और सहायता प्राप्त स्कूलों के कक्षा एक से आठवीं तक के अनुसूचित जाति और जनजाति व अल्पसंख्यक समुदायों को एक हजार रुपये की वार्षिक छात्रवृत्ति प्रदान करने का फैसला।
- अप्रैल 2011 से आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं का मासिक मानदेय 2500 रुपये से बढ़ाकर चार हजार रुपये और हेल्पर का 1250 रुपये से बढ़ाकर दो हजार रुपये।
- 30 नए स्कूल भवनों का निर्माण शुरू करने का प्रस्ताव। लगभग 191 करोड़ रुपये की लागत से 15 नए स्कूल भवनों के निर्माण की परियोजना मंजूर।
- शैक्षणिक सत्र 2011-12 से लाल बहादुर शास्त्री छात्रवृत्ति की दरें बढ़ाने का फैसला, सातवीं व आठवीं कक्षा के लिए छात्रवृत्ति 400 रुपये वार्षिक से बढ़ाकर एक हजार रुपये वार्षिक, नौवीं व दसवीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए 600 रुपये से बढ़ाकर 1500 रुपये और 11वीं व 12वीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए 1550 रुपये से बढ़ाकर दो हजार रुपये प्रतिवर्ष करने का फैसला। उन छात्रों को मिलेगी जिनके माता-पिता की वार्षिक आय दो लाख रुपये प्रति वर्ष से कम हो।
- नए अस्पताल भवनों के निर्माण के लिए 167 करोड़ रुपये का प्रस्ताव, द्वारका में नए अस्पताल के निर्माण के लिए 50 करोड़ रुपये भी शामिल।
- अंबेडकर नगर, बुराड़ी और विकासपुरी में सरकार-निजी भागीदारी के तहत नए अस्पतालों का निर्माण।
- दो नए मेडिकल कॉलेज बनाए जाएंगे। एक रोहिणी के अंबेडकर अस्पताल में तो दूसरा द्वारका में नए अस्पताल के परिसर में बनेगा।
- 2011-12 के अंत तक 15 नए भूमिगत जलाशयों का निर्माण।
- झुग्गी झोपड़ी बस्तियों में नागरिक सुविधाएं प्रदान करने के लिए परिव्यय 18 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 180 करोड़ रुपये करने का प्रस्ताव।
- 13,800 ईडब्ल्यूएस फ्लैट आवंटन के लिए तैयार, 27,700 नए ईडब्ल्यूएस मकानों का निर्माण कार्य शुरू।
- अनधिकृत कालोनियों में विकास कार्यों को अंजाम देने के लिए 698 करोड़ रुपये के परिव्यय का प्रस्ताव।
- परिवहन क्षेत्र के लिए वार्षिक योजना में 3346 करोड़ रुपये के परिव्यय का प्रस्ताव। कुल योजना परिव्यय का करीब 25 प्रतिशत।
- 14 नए बीआरटी कॉरिडोर का निर्माण। 105 किलोमीटर लंबे सात नए कॉरिडोर पीडब्लूडी और 124 किलोमीटर लंबे अन्य सात का निर्माण परिवहन विभाग द्वारा विकसित किए जाएंगे।
- दिल्ली मेट्रो के तीसरे चरण के लिए 1071 करोड़ रुपये परिव्यय का प्रस्ताव।
- पश्चिम और दक्षिण-पश्चिमी दिल्ली के निवासियों के लिए जनकपुरी में एक नए हाट के निर्माण का प्रस्ताव।
- सभी सरकारी और सहायता प्राप्त स्कूलों की कक्षा छह से 12 तक की बालिकाओं को स्वच्छता के उद्देश्य से सेनेटरी नैपकिन प्रदान करने का महत्वपूर्ण फैसला।

# महिला व बाल केंद्रित बजट की दरकार

मुद्दा

अलका आर्य

इधर अमेरिका के कारपोरेट जगत ने भारत सरकार के आम बजट से अपनी अपेक्षाओं की सूची वित्तमंत्री प्रणव मुखर्जी को भेजी है तो उधर देश के कुछ महिला संगठनों ने वित्तमंत्री को ज्ञापन देकर आधी दुनिया की आगामी बजट से अपेक्षाओं के बारे में अवगत करा दिया है। बहरहाल, इस बार बजट में 'जेंडर कम्पोनेंट' को बढ़ाने की मांग पर खास जोर दिया गया है। खाद्य पदार्थों की कीमतों में वृद्धि के मद्देनजर घर का जो बजट बिगड़ा है, उससे महिलाएं और बच्चे सबसे ज्यादा प्रभावित होते हैं।

महिला कामगारों की सुध लेते हुए सरकार का ध्यान इस ओर दिलाया गया है कि देश में असंगठित क्षेत्र के कुल कार्यबल में महिलाओं की तादाद करीब 96 फीसद है और इसमें अधिकांश को न्यूनतम दिहाड़ी भी उपलब्ध नहीं है। बहुत बड़ी संख्या में महिला कामगार ऐसे काम करती हैं जो घरों से संचालित होते हैं पर उनके नियोक्ता उन्हें कर्मचारी नहीं मानते। वे मातृत्व लाभ तथा बाल देखभाल सुविधा से भी वंचित हैं। यही नहीं, असंगठित कामगार सामाजिक सुरक्षा अधिनियम 2008 सिर्फ बीपीएल तक ही सीमित है। लिहाजा सरकार से मांग की गई है कि इस बजट में असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले सभी कामगारों की सामाजिक सुरक्षा के लिए संसाधन सुनिश्चित करने चाहिए व घरों में ठेकेदारों के लिए काम करने वाली महिलाओं के वास्ते खास योजना बनाने की जरूरत है।

'नेशनल कमीशन ऑफ इंटरप्राइसेस अनआर्गेनाइजड रिपोर्ट- 2007' के अनुसार 1999 और 2005 के बीच रोजगार अनौपचारिक क्षेत्र में बढ़ा है। यहां काम करने वालों में से अधिकांश को बहुत ही बुरी परिस्थितियों में काम करना पड़ता है। वे न तो न्यूनतम दिहाड़ी के हकदार हैं, और न ही सामाजिक सुरक्षा और वैतनिक अवकाश के। सरकार खुद भी इस संदर्भ में कटघरे में खड़ी है। सरकार 41.39 लाख महिलाओं की सेवाएं लेती है। इनमें से ज्यादातर आंगनबाड़ी वर्कर, मिड डे मील वर्कर व 'आशा' नाम से पहचान रखने वाली स्वास्थ्य कार्यकर्ता हैं। इनके काम असंख्य और औसतन मिलते हैं, महज 50 रुपये। इनके साथ हो रहे अन्याय को खत्म करने के लिए आगामी बजट में पर्याप्त फंड आवंटित करने की मांग की गई है।

सकल घरेलू उत्पाद का 6 फीसद शिक्षा व स्वास्थ्य पर खर्च करने की मांग की गई है क्योंकि ये दोनों सेक्टर

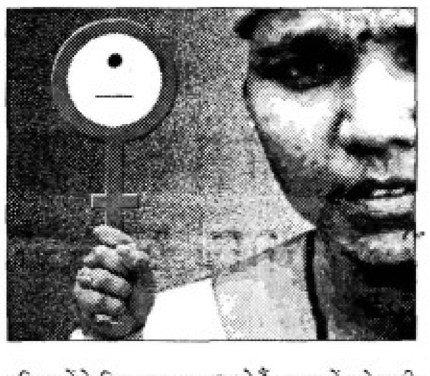

महिलाओं के लिए खास महत्व रखते हैं। स्कूल में जाने वाली लड़कियों का ड्रॉप-आउट रेट कम करने के लिए विशेष ध्यान देना होगा। उनके लिए अलग शौचालय जिसमें पानी की सुविधा उपलब्ध हो, का बंदोबस्त करना होगा व यह भी ध्यान में रखना होगा कि ऐसी व्यवस्था सिर्फ कागजों पर ही न हो बल्कि काम करने की हालत में हो। सुरक्षा के मद्देनजर स्कूलों की चारदीवारी बनाना भी प्राथमिकता हो। शिक्षा का अधिकार कानून लागू तो हो गया है पर पर्याप्त फंड की कमी आड़े आ रही है। सरकार को इस अधिनियम का लाभ उठाने के लिए बजट में खास फंड का प्रावधान रखना चाहिए ताकि अधिक से अधिक लड़कियां इससे लाभान्वित हो सकें। एक महत्वपूर्ण मांग यह की गई है कि महिला किसानों और कृषि पैदावार से जुड़ी महिलाओं को सरकार संस्थागत कर्ज देते समय विशेष रियायतें दें। जमीन का पट्टा उनके नाम नहीं होने के कारण उनकी मुसीबतें बढ़ जाती हैं और ऐसे में बैंक उन्हें कर्ज देने में आना-कानी करते हैं।

स्वयं सहायता समूह को मिलने वाली बैंकीय मदद के विस्तार की मांग के साथ-साथ स्पष्ट कहा गया है कि सरकार बजट के जरिये यह सुनिश्चित करे कि सभी महिलाएं कम ब्याज दर पर कर्ज ले सकें और ब्याज दर 4 फीसद से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। दलित, आदिवासी व अल्पसंख्यक वर्ग की महिलाओं को दो फीसद की ब्याज दर पर बैंकों से कर्ज मिलना चाहिए। अगर सरकार ऐसा करती है तो गरीब महिलाएं लाभान्वित हो सकती हैं। समेकित बाल विकास योजना के विस्तार की मांग के साथ इसे हेल्थ केयर डिलीवरी का असरकारक औजार बनाने की बात भी कही गई है।

बाल देखभाल सुविधाएं न दिए जाने पर भी ध्यान दिलाया गया है। अधिकांश राज्य मनरेगा के तहत मिलने वाली बाल देखभाल सुविधा वाले प्रावधान पर अमल नहीं कर रहे हैं। अधिकांश निजी संस्थान भी अपने यहां इस सुविधा को उपलब्ध कराने से मना कर देते हैं। इस बार भी सरकार को याद दिलाया गया है कि वह बाल विकास पर खर्च होने वाली रकम को महिलाओं पर खर्च होने वाले मद के साथ न मिलाए।

गौरतलब है कि 6 साल पहले लैंगिक असंतुलन को पहचानते हुए सरकार ने पहली बार वित्त वर्ष 2005-2006 में जेंडर के आधार पर बजटीय आवंटन की शुरुआत तो कर दी मगर अभी तक यह एक सीमित एक्सरसाइज ही साबित हुई है। तीन साल पहले तत्कालीन महिला एंव बाल विकास मंत्री रेणुका चौधरी ने कहा था कि आर्थिक विकास के मामले में आज भी कोई महिलाओं को समझने के लिए तैयार नहीं है। कमावेश यह तस्वीर हर बजट में दिखाई देती है। क्या 28 फरवरी को संसद में पेश होने वाला बजट महिलाओं की अपेक्षाओं पर खरा उतरेगा?

# महिला संगठनों को आम बजट से हुई निराशा

प्रतिभा शुक्ल

नई दिल्ली, 28 फरवरी। देश के तमाम महिला संगठनों ने आम बजट पर गहरी निराशा जताई है। सेंटर फार सोशल रिसर्च की निदेशक डा. रंजना कुमारी ने कहा है कि यह बजट महिला हितों की पूरी तरह अनदेखी करता है। महिला दक्षता समिति की अध्यक्ष सुमन कृष्णकांत ने कहा कि महंगाई का सबसे ज्यादा असर महिलाओं पर पड़ता है। जब तक महिला केंद्रित बजट नहीं, तब तक विकास के सारे दावे बेमानी हैं।

सेंटर फार सोशल रिसर्च की निदेशक के मुताबिक इस बार बजट में महिलाओं के लिए किसी भी तरह की कोई ठोस घोषणा नहीं की गई है। हालांकि सामाजिक क्षेत्र में बजट को 17 फीसद बढ़ा दिया गया है लेकिन इसका कोई ब्योरा नहीं दिया गया कि यह बजट महिलाओं को किस तरह से फायदा पहुंचाएगा। शिक्षा बजट में 24 फीसद बढ़ोतरी की गई है लेकिन इसमें से बालिका शिक्षा पर कितना खर्च होगा उसका कोई ब्योरा नहीं है। इससे लड़कियों के स्कूल छोड़ने की दर लगातार बढ़ती रहेगी क्योंकि उनको शिक्षा देने व स्कूल न छोड़ने की विवशता से बचाने के लिए कोई योजना नहीं बनाई गई है।

उन्होंने कहा कि एक ओर हम लिंग आधारित बजट की वकालत करते रहे हैं तो दूसरी ओर सरकार सामान्य रूप से भी महिलाओं के लिए बजट में प्रावधान नहीं की तो अलग-अलग विभागों में लिंग आधारित बजट प्रावधान की बात ही कहां बची। आंगनबाड़ी कर्मचारियों के लिए बजट में जो बढ़ोतरी है वह भी निम्नतम आय से कम है। स्वयं सहायता समूह के लिए 500 करोड़ रुपए का प्रावधान तो किया गया है लेकिन इसके प्रभाव का आंकलन करके ही पता चलेगा कि यह महिला हितों की पूर्ति के लिए है या बैंकों के।

महिला पर हिंसा रोकने के लिए बने कानून पर अमल करने के लिए बजट का प्रावधान नहीं किया गया है। महिला स्वास्थ्य के लिए अलग से कोई योजना नहीं है। इससे ज्यादा निराशाजनक क्या हो सकता है। महिला दक्षता समिति की अध्यक्ष सुमन कृष्णकांत ने इसे महिला विरोधी बजट करार देते हुए कहा कि एक ओर पुरुषों को महंगाई के असर से बचाने के नाम पर करों में छूट के लिए आय सीमा बढ़ा कर एक लाख 80 हजार कर दी गई जबकि महिलाओं को कर में महंगाई के मद्देनजर कोई राहत नहीं दी गई।

# अब बेहतर बदलाव की कुछ उम्मीद जगी

मारी मार्सेल थेकेकारा

भारत सरकार के योजना आयोग ने 12वीं पंचवर्षीय योजना में इस ऐतिहासिक गलती को दुरुस्त करने का विचार बनाया है। इसके लिए उसने ग्रासरूट कार्यकर्ताओं व विशेषज्ञों को आमंत्रित किया है, ताकि वे सरकार द्वारा पूर्व में अपनाई गई नीतियों व कार्यक्रमों की विफलता को ध्यान में रखते हुए इन समुदायों की बेहतरी के लिए रास्ता सुझाएं।

कभी वार्तालाप के दौरान घूमंतु या यायावर जनजातियों का जिक्र करें। आपके जेहन में जातीय वस्त्र पहने विशालकाय ढोलों की धुन पर नाचते हुए लोगों के दृश्य कौंध जाएंगे।

सच इतना खुशनुमा नहीं है। वह काफी भयावह है। कोई समय था, जब ये लोग अपनी विशिष्ट दुनिया में शांति के साथ और सम्मानपूर्वक रहते थे। ये पूरी तरह प्रकृति पर निर्भर थे और शिकार, कृषि व वनोत्पाद के सहारे जीवनयापन करते थे।

लेकिन सरकार की वन्य प्राणी संरक्षण संबंधी भ्रामक नीतियों, खनिज उत्खनन की तमाम योजनाओं व वन संसाधनों के प्रचुर दोहन का इनके रहवासी क्षेत्र पर यह असर हुआ कि ये भयंकर गरीबी व कुपोषण ही नहीं, भुखमरी के भी शिकार हो गए। कभी बाघों को बचाने के नाम पर, कभी उत्खनन कार्य करने हेतु और कभी बांधों के निर्माण के चलते अपने मूल निवास से विस्थापन इनकी नियति बन गई। परिणामतः जीवनयापन के लिए इन्हें अपनी ही जमीनों पर बंधुआ मजदूर की तरह मजदूरी करने के लिए बाध्य होना पड़ा है। यही नहीं, इनके बच्चे भी आस-पास के शहरों में लोगों के घरों में काम करने के लिए मजबूर हैं।

अब बदलाव की कुछ उम्मीद जगी है। भारत सरकार के योजना आयोग ने 12वीं पंचवर्षीय योजना में इस ऐतिहासिक गलती को दुरुस्त करने का विचार बनाया है। इसके लिए उसने ग्रासरूट कार्यकर्ताओं व विशेषज्ञों को आमंत्रित किया है, ताकि वे सरकार द्वारा पूर्व में अपनाई गई नीतियों व कार्यक्रमों की विफलता को ध्यान में रखते हुए इन समुदायों की बेहतरी के लिए रास्ता सुझाएं। इस बार प्राचीन, घूमंतु और गैर-अधिसूचित जनजातियों पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

सन 1975 में सरकार ने 'अनुसूचित जनजातियों के अंतर्गत कुछ ऐसे समुदायों को चिन्हित किया, जो विकास के दृष्टिकोण से काफी पिछड़े थे और जिन तक अनुसूचित जनजातियों के विकास के लिए दिया गया पैसा नहीं पहुंच पा रहा था। इन्हें 'प्रीमिटिव ट्राइबल ग्रुप' बुलाया गया है।

गैर अधिसूचित जनजातियों को ब्रिटिश लोगों ने अपराधी समुदाय घोषित किया था। इस समुदाय ने ब्रिटिश सरकार के शोषण का शिकार बनाने से मना किया और स्वतंत्रता के लिए जंग लड़ी। स्वतंत्रता के पश्चात इन्हें सम्मान देने के बजाय इन्हें गैर अधिसूचित कर दिया गया। भारतीय संविधान में इनके रक्षार्थ किसी प्रकार का प्रावधान नहीं दिया गया है। सेंसस रिकार्ड में इनकी गिनती कई बार नहीं की जाती, जिस वजह से पंचवर्षीय योजनाओं में उनका कोई उल्लेख नहीं होता। घूमंतु जनजाति का विकास कानूनी कारणों से बाधित होता है। समाज और पुलिस, दोनों से इन्हें शर्मिंदगी झेलनी पड़ती है। कई बार पुलिस बेवजह इनके ठिकानों पर छापा मारती है।

परिणामतः झूठी गिरफ्तारी, अवैध कारावास, हिरासत में मौत, बलात्कार, यौन शोषण इत्यादि झेलने के लिए ये अभिशप्त हैं। इनके साथ मानव अधिकारों का उल्लंघन आम बात है। एक जगह से दूसरी जगह जाते हुए, ये बेचने के लिए सामान रखते हैं, जो कि इनसे कई बार छीन कर जब्त कर लिया जाता है। सिर्फ इस आधार पर कि उनका सामान कहीं से चुराया गया है।

स्थिति वाकई गंभीर है। ये हमारे देश के नागरिक हैं। भारतीय संविधान के अंतर्गत इन्हें समान अधिकार प्राप्त है। फिर भी हमारे सामाजिक ढांचे में इनको हमेशा अलग-थलग रहना पड़ा है। आज जब देश आने वाले पांच वर्षों के लिए योजनाएं बना रहा है, हम उम्मीद करते हैं कि बारहवीं पंचवर्षीय योजना उनके साथ न्याय करेगी।

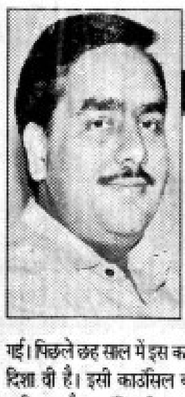

## नजरिया

**उपेंद्र राय**

# खाद्य सुरक्षा कानून से महंगाई भी कम होगी

यूपीए के शासनकाल में हुए बड़े फैसलों के पीछे नेशनल एडवाइजरी काउंसिल का हाथ रहा है। सोनिया गांधी के नेतृत्व में काम करने वाली काउंसिल में उनको जगह मिली जिनकी सत्ता में सीधी भागीदारी कम ही थी। कई चिंतकों और समाजसेवियों को इसमें जगह दी गई। पिछले छह साल में इस काउंसिल ने यूपीए सरकार की पॉलिसी को नई दिशा दी है। इसी काउंसिल की पैरवी की बदौलत देश को सूचना का अधिकार जैसा क्रांतिकारी कानून मिला। नेशनल एडवायजरी काउंसिल की ही कोशिश की बदौलत देश को राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना मिली, जिसने गांवों की तस्वीर बदल दी है। अब नेशनल एडवायजरी काउंसिल खाद्य सुरक्षा कानून की पैरवी कर रही है।

नेशनल एडवायजरी काउंसिल की सिफारिश है कि देश के 75 परसेंट घरों में सरकार हर महीने सस्ता अनाज मुहैया कराए। काउंसिल का सुझाव था कि ज्यादा जरूरतमंद परिवार (गरीबी रेखा से नीचे के परिवार) को हर महीने 35 किलो अनाज मिले। उसको गेहूं 2 रुपये प्रति किलो और चावल 3 रुपये प्रति किलो मिले। बाकी बचे परिवारों को हर महीने सस्ती कीमत पर 20 किलो अनाज दिया जाए। और उनके लिए कीमत न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी)से आधी हो।

लेकिन प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार समिति के अध्यक्ष सी रंगराजन की अध्यक्षता में बनी कमेटी ने काउंसिल के सुझावों में कई संशोधन कर दिए हैं। सी रंगराजन कमेटी का मानना है कि सस्ते अनाज की सुविधा 46 परसेंट ग्रामीण परिवार को और 28 परसेंट शहरी परिवार को ही मिले। कुल मिलाकर सस्ते अनाज की सुविधा सिर्फ 41 परसेंट परिवारों को ही मिले। उनको गेहूं 2 रुपये प्रति किलो और चावल 3 रुपये प्रति किलो के हिसाब से दिया जाए। फिलहाल खाद्य वितरण प्रणाली के जरिए देश के करीब साढ़े छह करोड़ परिवारों को हर महीने 35 किलो अनाज दिया जाता है। कम से कम कागजी हकीकत तो यही है। पीडीएस के जरिए गेहूं 4.15 रुपये प्रति किलो और चावल 5.65 रुपये प्रति किलो के हिसाब से बांटा जाता है। रंगराजन कमेटी का यह भी सुझाव है कि अनाज की कीमत महंगाई दर से जुड़ी हो ताकि महंगाई बढ़े तो अनाज की कीमत भी बढ़ाने की गुंजाइश हो।

रंगराजन कमेटी का कहना है कि अगर नेशनल एडवायजरी काउंसिल के सुझावों को माना जाता है तो तत्काल 64 मिलियन टन अनाज की जरूरत होगी, जबकि सारे अनुमान सही निकले तो भी सरकार इस साल 56 मिलियन टन से ज्यादा अनाज की खरीद नहीं कर पाएगी। इतना अनाज इकठ्ठा करने के लिए या तो सरकार को अपनी खरीद बढ़ानी होगी या फिर अनाज का आयात करना होगा। दोनों ही सूरत में बाजार में अनाज की कीमतें काफी तेजी से बढ़ेंगी। महंगाई से जूझ रही सरकार ऐसा कोई कदम नहीं उठा सकती है जिससे खाने-पीने की चीजों की महंगाई और भी बढ़े।

रंगराजन कमेटी का यह भी कहना है कि नेशनल एडवायजरी काउंसिल के सुझाव को माना गया तो सरकारी सब्सिडी का बोझ 92 हजार करोड़ रुपये बढ़ जाएगा। सरकारी घाटे को कम करने की कोशिश में जुटी सरकार के लिए यह संभव नहीं है कि सब्सिडी का बोझ इतना बढ़ाए।

रंगराजन कमेटी की तीसरी दलील है कि इतना अनाज सस्ते में बांटने के लिए वितरण प्रणाली को दुरुस्त करना होगा, साथ ही वेयरहाउस इंफ्रास्ट्रक्चर को भी बढ़ाना होगा। ऐसा नहीं हुआ तो भारी मात्रा में अनाज की बर्बादी होगी और फिर से बाजार में अनाज की कीमतों में बेतहाशा बढ़ोतरी हो जाएगी।

सी रंगराजन साहब के सारे सुझाव सिर आंखों पर। लेकिन उन्होंने नेशनल एडवायजरी काउंसिल के फूड सिक्योरिटी कानून की हवा ही निकाल दी। अब रंगराजन कमेटी की दलीलों पर नजर डालें। कमेटी की सबसे बड़ी दलील है कि अनाज की सरकारी खरीद बढ़ी तो बाजार में अनाज की कमी होगी और इसका कीमतों पर बुरा असर पड़ेगा। पिछले बासठ सालों का अनुभव बताता है कि सरकारी गोदामों में ज्यादा अनाज रहने से कीमतें स्थिर रहती हैं। व्यापारियों को हमेशा यह खतरा रहता है कि मुनाफाखोरी ज्यादा बढ़ी तो सरकारी अनाज बाजार में आ जाएगा और कीमतें नीचे आ जाएंगी। मतलब यह कि सरकारी गोदाम में रखा अनाज कीमतें बढ़ाता नहीं है उल्टे उस पर नियंत्रण रखने का काम करता है।

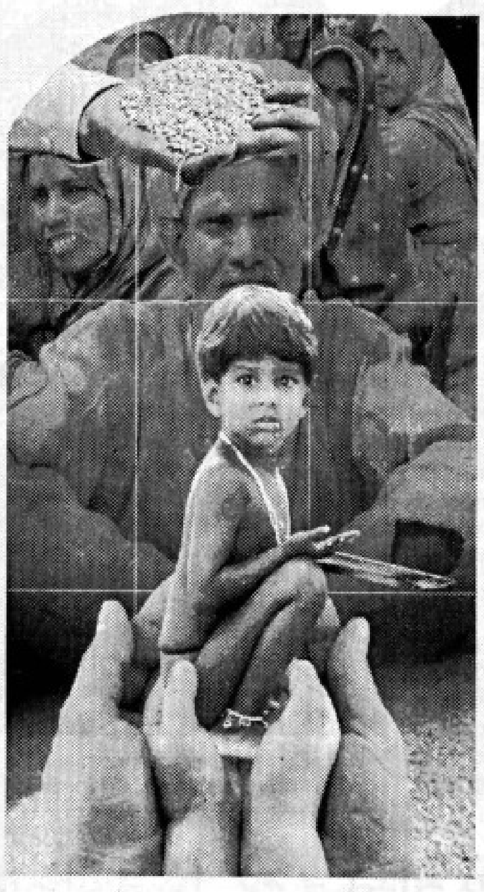

> फूड सिक्योरिटी कानून पर बहस हो रही है यह तो अच्छी बात है। लेकिन मेरा मानना है कि बहस इस दिशा में हो कि इसे ठीक से लागू कैसे किया जाए। अगर बहस इसीलिए हो रही है कि इस कानून को कैसे कमजोर किया जाए तो यह अच्छी बात नहीं है। हमने देखा है कि नेशनल एडवायजरी काउंसिल के कदमों का कितना दूरगामी असर हुआ है। मेरा मानना है कि फूड सिक्योरिटी कानून का भी दूरगामी असर होने वाला है

कमेटी की दूसरी दलील है कि सरकारी गोदामों की क्षमता इतनी नहीं है कि सरकारी खरीद को और बढ़ाया जा सके। हमारी क्षमता इतनी भी नहीं है कि हम हर साल 50 मिलियन टन अनाज को भी ठीक से रख सकें। मेरा मानना है कि सरकार फूड सिक्योरिटी बहाल करे या न करे, हमें अपना डिस्ट्रिब्यूशन नेटवर्क तो ठीक करना ही होगा। इसी गड़बड़ी की वजह से हर साल लाखों टन अनाज बर्बाद हो जाता है और 30 से 40 परसेंट फल और सब्जियां सड़ जाती हैं। फूड सिक्योरिटी के बहाने अगर वेयरहाउसिंग इंफ्रास्ट्रक्चर में सुधार हो जाए तो सोने पे सुहागा। यह हमारे देश की जरूरत है।

जहां तक सब्सिडी के बोझ का सवाल है तो उस पर मेरा मानना है कि खाद पर हर साल सब्सिडी का बड़ा बिल हमें चुकाना ही पड़ता है। खाद की सब्सिडी को खत्म कर दीजिए और फूड सिक्योरिटी पर ही ध्यान लगाइए। ऐसा होता है तो सब्सिडी का बोझ भी बहुत नहीं बढ़ेगा। वैसे भी खाद पर सब्सिडी का बहुत कम फायदा ही छोटे और मझोले किसानों को मिल पाता है। सस्ते अनाज बांटने का फायदा छोटे और मझोले किसानों को भी होगा।

फूड सिक्योरिटी लागू करने का तीसरा फायदा यह होगा कि अनाज की सरकारी खरीद उन इलाकों में भी होगी जहां फिलहाल ऐसा नहीं हो रहा है। ऐसा देखा गया है कि जिन इलाकों में सही तरीके से अनाजों की सरकारी खरीद होती है वहां किसानों को उपज का उचित दाम मिलता है। अगर इसी बहाने किसानों को अपनी उपज के लिए सही कीमत मिलने लगे तो अनाज का उत्पादन अपने आप बढ़ जाएगा। तब न तो कीमत बढ़ने का खतरा होगा और न ही अनाज के आयात की जरूरत होगी। महंगाई भी अपने आप काबू में रहेगी।

फूड सिक्योरिटी कानून पर बहस हो रही है यह तो अच्छी बात है। लेकिन मेरा मानना है कि बहस इस दिशा में हो कि इसे ठीक से लागू कैसे किया जाए। अगर बहस इसीलिए हो रही है कि इस कानून को कैसे कमजोर किया जाए तो यह अच्छी बात नहीं है। हमने देखा है कि नेशनल एडवायजरी काउंसिल के कदमों का कितना दूरगामी असर हुआ है। मेरा मानना है कि फूड सिक्योरिटी कानून का भी दूरगामी असर होने वाला है।

(लेखक सहारा इंडिया मीडिया के एडिटर एवं न्यूज डायरेक्टर हैं)

# जरूरी है इन बिंदुओं पर विचार

**प्रस्तावित खाद्य सुरक्षा कानून (एफएसए) को लेकर केंद्र सरकार और राष्ट्रीय सलाहकार परिषद (एनएसी) में मतभेद हैं:**

▶ पीएम की आर्थिक सलाहकार समिति (ईएसी) की सी. रंगराजन की अध्यक्षता में बनी कमेटी ने सोनिया गांधी की अध्यक्षता वाली एनएसी के उस प्रस्ताव पर असहमति जतायी है, जिसके तहत 75 फीसद आबादी को अनाज पर कानूनी रूप से सब्सिडी दिये जाने की बात है। इसके चलते प्रस्तावित एफएसए के तहत देश की करीब 75 फीसद गरीब आबादी को सस्ती दरों पर खाद्यान्न उपलब्ध कराये जाने की उम्मीदें धूमिल हुईं।

**रंगराजन कमेटी ने कहा क्या-** देश के वास्तविक रूप से जरूरतमंद परिवारों को ही 2 रुपये किलो गेहूं और 3 रुपये किलो चावल मुहैया करना चाहिए।

▶ **एनएसी का सुझाव : 1(अ)** सब्सिडी वाले खाद्यान्न के लिए बनाएं दो श्रेणियां- (क) 'प्राथमिकता वाली और **(ख)** सामान्य श्रेणी'।

**1(ब)** इसके तहत ग्रामीण इलाकों की 90 फीसद व शहरी इलाकों में 50 फीसद आबादी को सब्सिडी वाला खाद्यान्न मुहैया कराया जाए।

▶ सरकार प्राथमिकता वाली (पहली) श्रेणी के परिवारों को प्रतिमाह 35 किलो खाद्यान्न उपलब्ध कराए। इसमें मोटा अनाज ₹1/- प्रति किलोग्राम के भाव पर, गेहूं ₹2/- प्रति किलो और चावल ₹3/-प्रति किलो में मुहैया कराया जाए।

▶ सामान्य श्रेणी के चिह्नित परिवारों को हर माह 20 किलो खाद्यान्न उपलब्ध कराने की सिफारिश और उनके लिए कीमत न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) से आधी रखने की ख्वाहिश।

▶ यानी मूल्य गेहूं ₹ 5.50 और चावल ₹7.70 प्रति किलो में दिये जाने का विचार।

**रंगराजन समिति का तर्क :** एनएसी के प्रस्तावों के हिसाब से एफएसए लागू होने पर पहले चरण (वर्ष 2011) में 687.6 लाख टन तथा दूसरे चरण (2014) में 739.8 लाख टन अनाज की जरूरत पड़ेगी। इसे देखते हुए किसी भी चरण में एनएसी के प्रस्ताव को लागू कर पाना सम्भव नहीं होगा। इतना अनाज सस्ते में बांटने के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) को दुरुस्त करना होगा, साथ ही गोदामों के ढांचे (वेयर हाउस इंफ्रास्ट्रक्चर) को भी बढ़ाना होगा।

▶ इससे लागत काफी बढ़ेगी।

▶ यह नहीं हुआ तो भारी मात्रा में अनाज की बर्बादी होगी और फिर से बाजार में अनाज की कीमतों में बेतहाशा बढ़ोतरी हो जाएगी।

▶ (सवाल यह है कि क्या किसी अनाज या खाद्यान्न की बढ़ी कीमत में कोई उल्लेखनीय कमी आया है?)

**मौजूदा स्थिति :** सरकार पीडीएस के जरिये देश के 18.04 करोड़ परिवारों को सस्ता खाद्यान्न उपलब्ध कराती है।

▶ इनमें गरीबी रेखा से नीचे (बीपीएल) परिवार 6.52 करोड़ और गरीबी रेखा के ऊपर (एपीएल) 11.5 करोड़ हैं। इन परिवारों को गेहूं ₹4.15 प्रति किलो और चावल ₹5.65 प्रति किलो की दर से दिया जाता है। 2009-2010 में पीडीएस के तहत 4.24 करोड़ टन खाद्यान्न का वितरण हुआ था।

**रंगराजन का मत :** एनएसी के सभी सुझाव मान लिये जाएं तो सरकार का सब्सिडी बिल ₹92 हजार करोड़ तक पहुंच जाएगा।

▶ सरकारी घाटे को कम करने की कोशिश में जुटी सरकार के लिए यह सम्भव नही है कि वह सब्सिडी का बोझ इतना बढ़ाये।

**ढोल में पोल :** एफएसबी को अंतिम रूप देने के लिए सरकार की तरफ से अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी।

**जवाब है गोल :** महंगाई और खाद्यान्न की कमी से जिंदगी जी रहे लोगों को कैसे दी जा सकेगी खाद्य सुरक्षा ?

▶ क्या सरकार तब तक भुखमरी को दावत देना चाहेगी?

▶ एफएसए को अंतिम रूप देने के लिए यूपीए सरकार के भीतर पिछले 20 माह से बहस हो रही है फिर भी इस मसले पर नतीजा सिफर, क्यों?

**मानें या न मानें, यह भी तो जानें :** मानवाधिकारों की वैश्विक घोषणा (1948) के अनुच्छेद 25 (1) के मुताबिक प्रत्येक व्यक्ति को अपने तथा परिवार के लिए बेहतर जीवन स्तर बनाने व स्वास्थ्य की स्थिति प्राप्त करने का हक है जिसमें भोजन, कपड़ा व आवास की सुरक्षा शामिल है।

▶ इसी तरह खाद्य एवं कृषि संगठन ने भी 1965 में अपने संविधान की प्रस्तावना में घोषणा की थी कि मानवीय समाज की भूख से मुक्ति सुनिश्चित करना इसके बुनियादी उद्देश्यों में से एक है।

**इनका क्या हुआ?** यूपीए सरकार ने अपने दूसरे कार्यकाल में खाद्य सुरक्षा को कानूनी रूप देने के लिए पहले 100 दिन के एजेंडे में रखा था।

▶ सरकार बनने के 100 दिनों के भीतर एफएसी को न तो कानूनी रूप दिया गया व न ही गरीबों को भोजन की गारंटी का अधिकार।

**अब भी है पेच :** इस साल जून में होगी बीपीएल परिवारों की गणना।

▶ जनगणना होने तक सरकार एफएबी को डाल सकती है ठंडे बस्ते में। इसके चलते गरीबों को सस्ते अनाज का कानूनी हक पाने के लिए कुछ और समय तक करना होगा इंतजार।

**आशंका की वजह :** सरकार के पास हैं गरीबों के बारे में कई भ्रामक आंकड़े। किसी पर नहीं है सर्वानुमति।

▶ वाधवा समिति के अनुसार बीपीएल परिवारों की संख्या- 20 करोड़।

▶ विश्व बैंक के अनुसार- सिर्फ 7.5 करोड़।

▶ अर्जुन सेनगुप्ता समिति के अनुसार- 20 करोड़।

▶ योजना आयोग के अनुसार 7 करोड़ से ज्यादा।

**बहस का विषय :**

▶ गरीबी की परिभाषा क्या है? ▶ देश में कौन-कौन गरीब हैं? ▶ गरीबों की वास्तविक संख्या कुल कितनी है?

**हकीकत :** देश में हर साल अकाल मरते हैं लगभग 25 लाख शिशु।

▶ 42 प्रतिशत बच्चे हैं गम्भीर कुपोषण के शिकार।

▶ केंद्रीय बाल एवं महिला कल्याण मंत्रालयों और विभागों के बावजूद गर्भवती महिलाओं को न्यूनतम भोजन देने की नही है कोई समन्वित योजना।

▶ अनाज गोदामों के अभाव और भंडारागारों के कुप्रबंधन के चलते अनाज सड़ने के बावजूद सरकार उसे भूखे-नंगों को मुफ्त बांटने को नही है तैयार।

▶ ग्रामीण क्षेत्रों में खाद्यान्न और आजीविका के लिए रोजगार के अभावों के चलते बड़ी संख्या में शहरों-कस्बों की ओर हो रहा है पलायन।

▶ सरकार नहीं समझना चाहती कि किसानों के लिए खेतिहर मजदूरों या गांव से कस्बों-महानगरों तक पहुंचे श्रमिकों के बल पर ही बढ़ सकता है उत्पादन।

▶ लम्बी प्रक्रिया में व्याप्त भ्रष्टाचार के मद्देनजर किसानों को सीधे, और अधिक सब्सिडी देने की योजना क्यों नही क्रियान्वित करती सरकार?

**बाहर भी तो देखें :** अमेरिका और यूरोप में अनाज सस्ता होने के बावजूद सरकारी प्रश्रय के कारण किसानों को नहीं होती कोई शिकायत। वहां किसानों को ऋण और बीमा की हैं बेहतर, व्यापक और बिल्कुल न उलझाने वाली योजनाएं।

**यह सोचें :** ऐसा नही है कि देश में गरीबों को पेटभर खाना देने के लिए हमारे पास खाद्यान्न की कमी है। यह ठीक है कि जितने गरीब हैं उन्हें देखते हुए अनाज उत्पादन बढ़ाना पड़ेगा और इसकी बर्बादी रोकने के लिए उचित भंडारण की व्यवस्था करनी पड़ेगी।

**बर्बाद होता है अनाज :** एक अनुमान के अनुसार अपने यहां फसल की कटाई से लेकर उसको गोदाम में पहुंचाने तक जितना अनाज बर्बाद हो जाता है, वह आस्ट्रेलिया में खाद्यान्न की उपज के बराबर है।

**न्याय का दृष्टिकोण :** सुप्रीम कोर्ट सरकार से बार-बार कह रहा है कि अनाज को सड़ने के लिए छोड़ने से बेहतर है कि गरीब का पेट भरा जाए। चूहों के हवाले करने से बेहतर है कि इसका वितरण गरीबों के बीच किया जाए।

▶ सिर्फ नीति बनाने से नही चलेगा काम। उन्हें जमीनी स्तर पर लागू करने की भी है जरूरत।

▶ किसानों के हितों को ध्यान में रखते हुए सरकार को ही करनी होगी खाद्यान्न की खरीद।

▶ अनाज का सुरक्षित भंडारण भी उतना ही है आवश्यक।

▶ उचित भंडारण की जगह नही है तो इसे सीधे पीडीएस के जरिये गरीबों तक भेजा जा सकता है।

**निष्कर्ष :** एनएसी मानती है कि आर्थिक विकास के लाभों से देश का व्यापक वर्ग वंचित है। मगर नौकरशाह इसे झुठलाते हैं।

▶ कारण, दुर्व्यवस्था में होती है व्यापक भ्रष्टाचार की सम्भावना।

▶ उत्तर प्रदेश में (न्यायिक विचाराधीन) लाखों करोड़ रुपये का अनाज घोटाला है इसका जीता-जागता सबूत।

▶ गरीबों को खाने का अनाज मिले, यह दायित्व सरकार का नही है तो किसका है? इस पर सोचने की जरूरत है। एनएसी की सिफारिशों को लागू कराने के लिए यूपीए अध्यक्ष को ही सरकार पर डालना होगा जोर।

▶ प्रधानमंत्री को यह समझना होगा कि देश के गरीबों के बारे में ज्यादा संवेदनशीलता बरती जानी चाहिए। यह भी ध्यान देना होगा कि महज खाद्यान्न की उपलब्धता से लोगों को संतुलित भोजन नही मिल पाएगा। अन्न को जरूरतमंद लोगों तक समय रहते पहुंचा सके।

▶ इसके लिए सरकार अपने तंत्र और व्यवस्था को तर्कसंगत तथा प्रभावी बनाए। यह तभी हो पाएगा जब सरकार इसे अपनी प्राथमिकताओं में करेगी शामिल।

### 12 वर्षों में खाद्यान्न उत्पादन

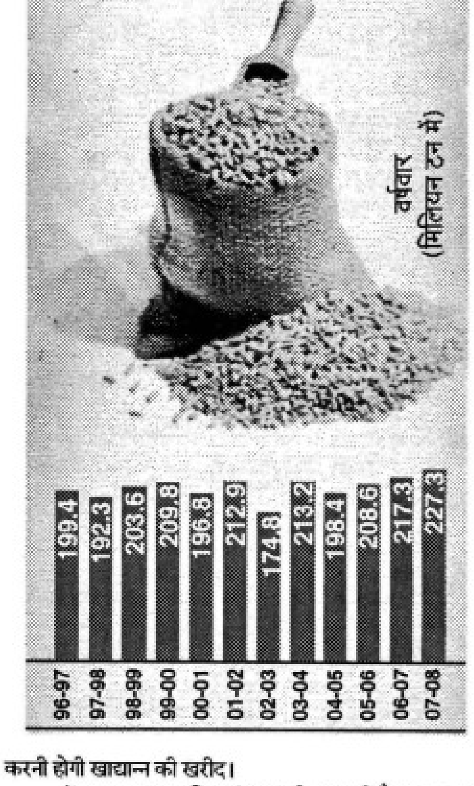


(आंकड़ा स्रोत: सीईएफएस व कृषि मंत्रालय)

■ प्रस्तुति : हस्तक्षेप डेस्क

**कृषि एवं खाद्य मंत्री शरद प्रवार का मत :** एनएसी की सिफारिशों को लागू करने के लिए हर साल 6.2 करोड़ टन खाद्यान्न की जरूरत होगी

**ईएसी अध्यक्ष सी.रंगराजन का मत :** एनएसी के सभी सुझाव मान लिये जाएं तो सरकार का सब्सिडी बिल 92 हजार करोड़ रुपये तक पहुंच जाएगा

*निशुल्क प्रतियों के लिए संपर्क करें -*

जागोरी बी-114 शिवालिक मालवीय नगर, नई दिल्ली-110017, फ़ोनः 26691219, 26691220

email: resource@jagori.org/jagori@jagori.org
www.jagori.org

ICCO-EED के सहयोग से प्रकाशित।